ISSN : 2321-3922
जनवरी–2016
BIHHIN05394

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.net

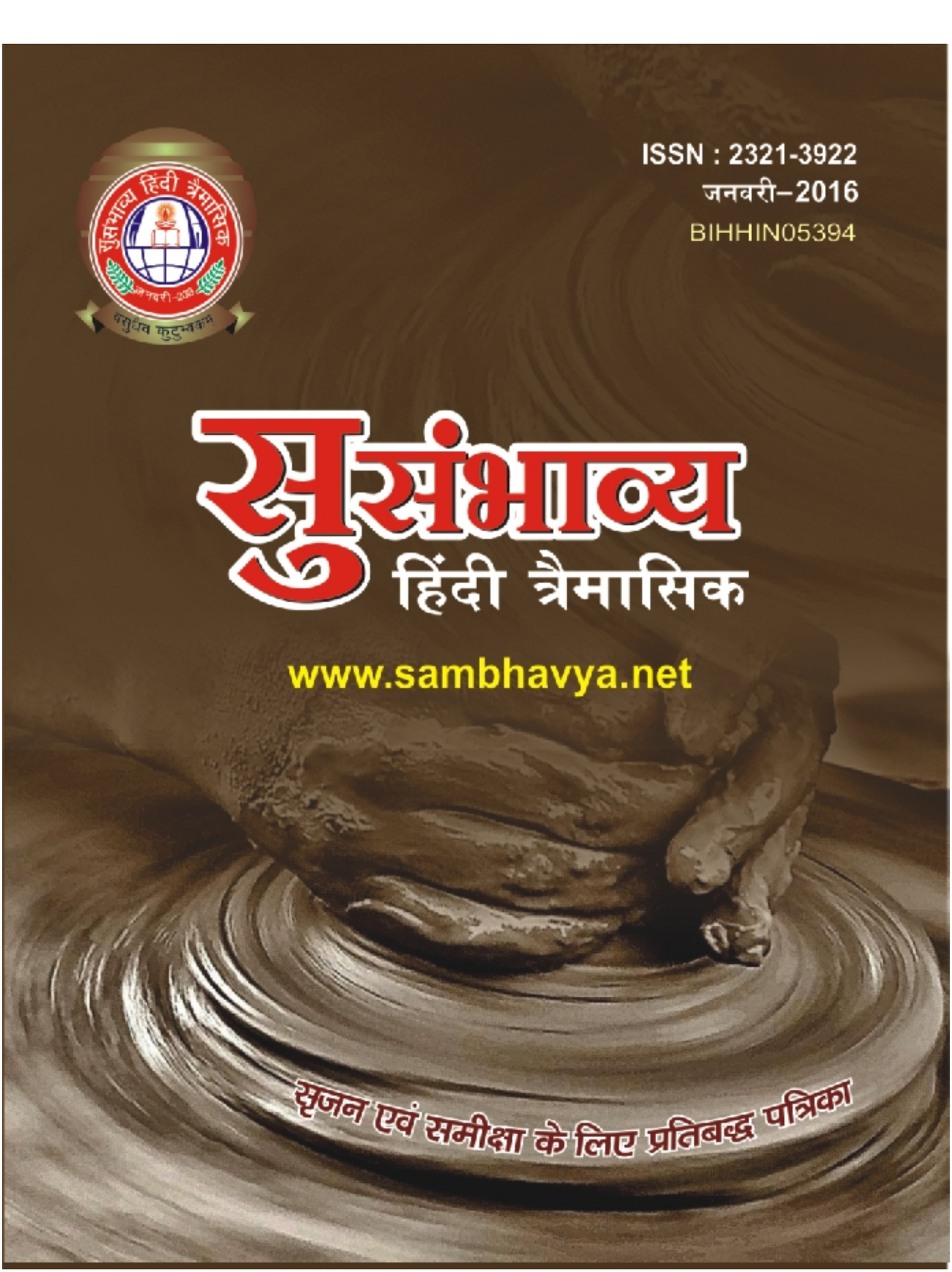

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–2016

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्री मती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी
प्रवीण कुमार

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

विशिष्ट सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्री शिवनन्दन प्रसाद सिंह
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.sambhavya.net

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णत: नि:शुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 40 देशों के पाठक सहित भारत के 84 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.sambhavya.net पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल–2016 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल करें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

ISSN - 2321-3922

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2	आलेख	आधुनिकता के अग्रदूत: मैथिली शरण गुप्त	डॉ. पुनीत विसारिया	6
3	आलेख	बाजारबाद बनाम पुस्तकें	डॉ. सुनीता अवस्थी	10
4	आलेख	महादवी की वेदना	संतोष कुमार	12
5	आलेख	कला और वेदना के रोमानीकथाकार : निर्मल वर्मा	अभिजित सिंह	14
6	आलेख	भूमंडलीकरण के संदर्भ में भारत और हिन्दी	सुरजीत सिंह वर्णवाल	18
7	समीक्षा	नागार्जुन की काव्य चेतना	डॉ. सजित खांडेकर	21
8	समीक्षा	नींद के हिस्से में कुछ रात भी आने दो	अभिनव अरूण	23
9	समीक्षा	सर्जक की डेहरी	रंणजीत यादव	24
10	समीक्षा	अभय दात्री कहानीकार मैत्रेयी	डॉ. एस. के. साबिरा	26
11	गीत	हिन्दी नहीं तो कुछ भी नहीं	डॉ. अश्विनी	28
12	कविता	अरूणाशानवाग	डॉ. गिरिजा शंकर मोदी	29
13	कविता	सन्नाटों की लिपटी	शैलेन्द्र चतुर्वेदी	30
14	कविता	प्रकृति / संघर्ष	मालिक राजकुमार	30
15	कविता	भावभींनी बात हो / मन समन्दर हो चला	कविता विकास	31
16	कविता	कविता मेरी	डॉ. छवि निगम	32
17	कविता	उफ! गर्मी बहुत है रे...	सविता मिश्रा	32
18	कविता	आदमी	कृष्ण मोहन किसलय	33
19	गजल	उसने खुद को पाने	विज्ञान व्रत	33
20	गजल	ये जमीं ये आसमां	सदानन्द सुमन	34
21	गजल	खुद से रूठे तो / जिन परिन्दों के	अनिरूद्ध सिन्हा	34
22	गजल	मुद्दत के बाद	डॉ. मंजरी पाण्डेय	35
23	गजल	जमाना प्यार के	चाँद मुंगेरी	35
24	गजल	मंजिल को पाने	मंजु गुप्ता	35
25	लघुकथा/कविता	घुंधली यादें / दो नयन	रजनी गुप्ता	36
26	कहानी	चरित्र	डॉ. अनुज प्रभात	37
27	कहानी	दस बरस पहले	हिमांसु मोहन जायसवाल	43
28	लोकवाणी			

स्वागतम्

नये साल में

नये साल में नयी उमंगें लायेंगे
जीवन में अद्‌भूत तरेंगे लायेंगे
नव उत्थान लिए नवकुसुम बनकर
हर्षोल्लास सबके मन में भर लायेंगे
नया संकल्प नयी राह दिखलाकर
सबके मन को नयी राह दिखलाकर
नव–किरण की हर्षमय उल्लास लेकर
नवअंकुर बन नवीन उत्कर्ष भरा
नयी सोच की नवल पद्धति लायेंगे
नयी ज्योति से नववर्ष में मुस्काकर
तेरे पथ फूलों से भर लायेंगे।

रमेश कुमार सिंह

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

इस धरती के किसी भी कोने में जुल्म हो, वह जुल्म आदमी के साथ है, दर्द, पीड़ा, उत्पीड़न और संवेदना को सभी–समान रुप से भोगते हैं। साहित्यकार भी उस पीड़ा में सम्मिलित होता है, यहीं उसकी विश्व नागरिकता देखी जाती है। संसार के सारे महान साहित्यकारों ने वैश्विक मानवता की बातें की हैं। यही कारण है कि आज अगर कोई रचनाकार समय की विसंगतियों को झेलता है, समय के सच को अपनी इमानदार अभिव्यक्ति देता है तो वह मात्र अपने अन्दर पलते दया, करुणा, सहानुभूति या वैचारिक क्रांति का भाव इजहार ही नहीं करता, बल्कि अपनी भाषा, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्वग्राम के प्रति अपनी जिम्मेवारी का निर्वाह भी करता है। लेकिन लोगों की अवधारणा अपने आप में किसी पहेली से कम नहीं है। उसके वस्तविक जीवन में कई तरह के विभाजन भी हैं और विभाजनों के बीच टकराव और संघर्ष भी हैं। उसके अस्तित्व के सामाजिक पहलू में वर्ग, जातियाँ, धार्मिक समुदाय और तमाम तरह की गिनतियों पर आधारित बहुसंख्यक–अल्पसंख्यक इत्यादि भेद और बँटवारे हैं। किन्तु इन सबके बावजूद समाज को एकता के सूत्र में बाँधना एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो सबोंके अस्तित्व से जुड़ा है उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

आज विश्व का स्वरुप वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है, जिसे देखा जा सकता है, स्पर्श किया जा सकता है, पहचाना जा सकता है और उसका आनन्द लिया जा सकता है, वह निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है और अपने आकाश की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर रहा है, तारों और नक्षत्रों के वक्ष पर अपने पद चिह्न छोड़ रहा है, उसके हाथों में आज सृजन और विध्वंस की असीम शक्ति निहित है। वह गति के पंख लगाकर सीमाहीन अंतरिक्ष में प्रवेश कर उसके रहस्यों का उद्‌घाटन करने में सक्षम है। फिर भी मानव अपनी इच्छाओं को त्यागने की बात न सोचकर उनकी पूर्ति का मार्ग खोज रहा है। उसका तर्क है कि इच्छाएँ ही उपलब्धियों की जननी है। फिर भी देखें तो नेताओं में विवाद, अभिनेताओं में विवाद, विचारकों में विवाद इतने बढ़ते जा रहे हैं कि आनेवाले समय के सौ साल बाद जब हमारे बच्चे आज के इन विभत्स प्रसारणों को देखेंगे तो उसे लगेगा हमारे पूर्वजों के पास एक दूसरे से उलझने के अलावा कोई और काम नहीं था। उसे यह समझने में देर नहीं लगेगी की हमारे रहनुमाओं की रूची इसे हल करने से ज्यादा अपने पक्ष में भुनाने से थी। राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय शब्द वीरों ने मिडिया के सहयोग से चिल्ला–चिल्लाकर वे एक दूसरे को झूठा और बेइमान सावित करने में लगे हैं। यहाँ कोई हमारी भूख, भय, गरीबी और अशिक्षा दूर करने को नहीं सोच रहे हैं। इसलिए आज साहित्यकारों की जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। वर्त्तमान में उनका काम लेखन ही नहीं रह गया है। उनपर यह जिम्मेदारी भी आती है कि वे सक्रिय संस्कृति के प्रचार–प्रसार के कार्य में लग जाँए ताकि सांस्कृतिक आन्दोलन आगे बढ़े।

आज की सशक्त मनभावन परम्पराओं वाली बाजार की ताकतें मनुष्य को अकेला और कमजोर बनाने पर विश्वास करती हैं। साहित्य को भी कहीं गरिमा मंडित किये जाते हैं तो कहीं उपभोक्ता वादी जीवन का अलंकरण बना दिये जाते हैं। इस वैश्वीकरण और नव–उदारवाद में अपने को बदलना होगा। अधकचरा छटेगा। जिम्मेदारी से जो रचेगा वही बचेगा। क्योंकि उँचा लक्ष्य और संकीर्णताओं से बाहर निकलने में कतराना साहित्य की दुनिया में आत्म विनाशकारी है। विश्वग्राम और सांस्कृतिक बहुलता दोनों एक साथ रह सकती हैं क्योंकि दोनों में गहरा संबंध है।

हमारे सुधि रचनाकारों की संवेदनात्मक मौलिक अभिव्यक्ति में नयी भाव–भूमि, जीवन–बोध, स्वतंत्र, सौन्दर्य–दृष्टि, विकसित चित्तवृत्ति और सांस्कृतिक तेजस्विता का चेतनात्म संयोग घटित है। प्रकृति और प्रेम की नई संवेदनाएँ मिलती हैं, जो उनके बिंबों से सूचित होती है। जीवन के उदासी क्षण को भी अनार के चमकते दानों में बदलने की कोशिश है। रचनाओं के माध्यम से ये अपने परिवेश के यथार्थ को बहुत दिलचस्प बनाकर पेश करते हैं। इनकी शैली में गजब की विविधता है। वे यथार्थ वादी भी हैं और रुमानी भी।

जैसा की आप जानते हैं सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के द्वारा जो टाइटल कॉड उपलब्ध कराया गया है। उसमें **संभाव्य को सुसंभाव्य नाम दिया गया है।** यही करण है कि अब यह पत्रिका सुसंभाव्य के नाम से प्रकाशित होगी।

हम 'सुसंभाव्य' के लिए सभी विधाओं के सृजन में नवीनता लाने वाले तथा विश्वग्राम को बेहतर बनाने के स्वप्न संजोए सभी साहित्यकारों, विद्वान, लेखकों, प्रबुद्ध पाठकों और सुसंभाव्य परिवार के हर सदस्यों का जो हमें सहयोग मिलता रहा उन सबों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए नव वर्ष की अशेष मंगल कामना करते हैं।

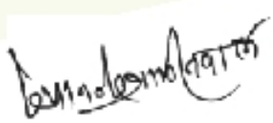

आलेख

आधुनिकता के अग्रदूत
मैथिलीशरण गुप्त

डॉ० पुनीत बिसारिया
वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
नेहरु स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, ललितपुर (उ०प्र०)
मो०–09450037871

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की काव्यात्मक दृष्टि के संचारक, संवाहक तथा प्रयोक्ता के रूप में गुप्त जी हमारे सम्मुख आते हैं। महीयसी महादेवी वर्मा उनके काव्य संसार की समीक्षा करती हुई कहती हैं, '' गुप्त जी कवि भी हैं और भक्त भी, अतः निर्माण भी उनके स्वभाव में है और निर्मिति के प्रति आत्मसमर्पण भी। साहित्य में उन्हें ऐसी ही कथाएँ चाहिए, जो लोक–हृदय में प्रतिष्ठा पा चुकी हों, पर उस परिधि के भीतर हर चरित्र का कुछ नया निर्माण उनका अपना है। वे रामायण को नहीं भूलते, पर रामायणकार जिन्हें भूल गया, उन चरित्रों को अपने ढंग से स्मरण करते हैं। वे महाभारत के स्थान में कोई अन्य कथा नहीं खोजेंगे, पर महाभारत के भीतर खोए हुए किसी साधारण पात्र को खोज लेंगे। ये कथाएँ अनेक युगों की लम्बी यात्राएँ, आँधी–पानी, धूप–छाया सहते –सहते धूमिल हो गयी हैं पर जिन्हें ये वहन करके लाई हैं, वे पात्र गुप्त जी के आँसुओं में धुल–धुलकर नए रंगों में उद्भासित आज के प्राणी बन चुके हैं। उनके साहित्य में ''जो नया है, उसका मेरुदण्ड पुराना है और जो पुराना है उस पर रंग नया है।''

उपर्युक्त पंक्तियों से गुप्त जी के साहित्यिक वैशिष्ट्य की झाँकी देखने को मिल जाती है। आइए, अब पूर्वावलोकन करते हैं और काल के पहिए को थोड़ा और पीछे ले चलते हैं। आचार्य रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रामायण के कई उपेक्षित पात्रों की ओर साहित्य जगत का ध्यानाकर्षण कराया था। कवीन्द्र रवीन्द्र ने बंगला भाषा में 'काव्येर उपेक्षिता नार्या' लेख लिखकर काव्य जगत के उपेक्षित नारी पात्रों के नामोल्लेख करते हुए कवियों का आह्वान किया था कि कविगण इन उपेक्षित नारी पात्रों को केन्द्र में रखकर काव्य सर्जना करें, ताकि ऐसे पात्रों को भी काव्यजगत में चिरप्रतीक्षित स्थान हासिल हो सके। बंगला में माइकेल मधुसूदन दत्त ने उनके आह्वान को स्वीकार करते हुए 'मेघनाद वध' की रचना की। आचार्य द्विवेदी ने गुप्त जी से इस लेख की चर्चा की तथा उनसे उपेक्षित नारी पात्रों का उद्धार करने हेतु काव्य रचना का अनुरोध किया। गुप्त जी ने अपने साहित्यिक संरक्षक के अनुरोध का सम्मान करते हुए एकाधिक उपेक्षित नारी पात्रों का उद्धार किया।

गुप्त जी की साहित्य साधना का समारम्भ सन 1909 में 'जयद्रथ वध' खण्डकाव्य से हुआ। इस खण्डकाव्य में उन्होंने महाभारत की जयद्रथ वध की कथा को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। 'साकेत' तथा 'भारत–भारती' के पश्चात गुप्त जी के इस ग्रन्थ को सर्वाधिक प्रसिद्ध प्राप्त हुई। चूंकि यह गुप्त जी की प्रारम्भिक साहित्यिक रचना है, अतः इसमें उनके काव्य कौशल का पूर्ण परिपाक निखरकर सामने नहीं आ सका है और कई बार अतिशय संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के कारण अनेक स्थलों पर उनकी भाषा अतिशय बोझिल हो गयी है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

यों देख भक्तों को प्रपीड़ित, शोक के अति भार से, कुछ द्रवित अच्युत भी हुए, कारुण्य के संचार से!
तल मध्य अनल स्फोट से, भूकम्प होता है जहाँ, होते विकंपित से नहीं, क्या अचल भूधर भी वहाँ!

इसके तीन वर्ष बाद सन 1912 में भारत–भारती प्रकाशित हुआ। भारत–भारती के प्रकाशित होते ही समूचे साहित्य जगत में मानो तहलका मच गया। इस ग्रन्थ से युवाओं के मन में देशप्रेम की लहरें हिलोरें लेने लगीं। सन 1936 में जब राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने गुप्त जी को 'मैथिली मान ग्रंथ' भेंट किया, तो गाँधी जी ने उन्हें राष्ट्रकवि' कहकर सम्बोधित किया। तब से गुप्त जी की ख्याति राष्ट्रकवि के रूप में विस्तीर्ण हो गयी। भारत–भारती में गुप्त जी ने अतीत के गौरवपूर्ण कालका स्मरण कराते हुए देशवासियों को देशहित में तत्पर होने का आह्वान किया है। उन्होंने अपनी ओजस्वी लेखनी से देशवासियों को प्रबोधन देते हुए कहा–

जो भरा नहीं है भावो से, जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

भारत की दार्शनिक विरासत की चर्चा करते हुए वे पराधीन भारत के निवासियों को उनके अतीत के गौरव का स्मरण कराते हैं–

पाए प्रथम जिनसे जगत ने दार्शनिक संवाद हैं, गौतम, कपिल, जैमिनी, पतंजलि, व्यास और कणाद हैं।
सामान्य नीति समेत ऐसे राजनीतिकं ग्रंथ हैं, संसार के हित जो प्रथम, पुण्याचरण के पंथ हैं।
उन ऋषिगणों ने सूक्ष्मता से, काम इतना है लिया, आश्चर्य है घट में उन्होंने, सिन्धु को है भर दिया।

और जब वे तत्कालीन जीवन स्थितियों मे व्याप्त निर्धनता के अभिशाप की ओर दृष्टिपात करते हैं तो छटपटाते हुए यह चित्र अंकित कर देते हैं–

यह पेट उनकी पीठ से, मिलकर हुआ क्या एक है।
मानो निकलने को परस्पर, हड्डियों में टेक है।
निकले हुए हैं दांत बाहर, नेत्र भीतर हैं धंसे।
किन शुष्क आंतों में न जाने, प्राण कितने हैं बसे।
अविराम आँखों से बरसता, आंसुओं का मोह है।
है लटपटाती चाल उनकी, छटपटाती देह है।
गिरकर कभी उठते यहाँ, उठकर कभी गिरते वहाँ।
घायल हुए से घूमते हैं, वे अनाथ जहाँ–तहाँ।

अपनी आत्मविस्मृति पर तंज कसते हुए वे कहते हैं–

हम आज क्या से क्या हुए, भूले हुए हैं हम इसे।
है ध्यान अपने मान का, हममें बताओ अब किसें!

पूर्वज हमारे कौन थे, हमको नहीं यह ज्ञान भी।
है भार उनके नाम पर दो अंजली जलदान भी।
और अंत में भविष्यत खण्ड में वे ईश्वर से कामना करते हुए लिखते हैं–
इस देश को हे दीनबन्धो, आप फिर अपनाइए।
भगवान भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइए।
जड़तुल्य जीवन आज इसका, विघ्न बाधा पूर्ण है।
हेरम्ब, अब अवलम्ब देकर विघ्नहर कहलाइए।

सन् 1925 में प्रकाशित 'पंचवटी' खण्डकाव्य में गुप्त जी ने रामायण के शूर्पणखा प्रसंग को लिया है। इस ग्रंथ में कवि ने प्रकृति सौन्दर्य, हास्य–विनोद, तथा नाटकीय परिस्थितियों की उद्‌भावना की है। प्रकृति चित्रण के श्रेष्ठ आनुप्रासिक उदाहरण के रूप में निम्नांकित पंक्तियाँ प्रायः उद्‌धृत की जाती हैं–

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल–थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों की नोंकों से।
मानों झूम रहे हों तरु भी, मन्द पवन के झोंकों से।

शूर्पणखा के प्रणय निवेदन का चित्र उकेरते हुए गुप्त जी लक्ष्मण के मुख से कहलाते हैं–

सुन्दरि, मैं सचमुच विस्मित हूँ, तुमको सहसा देख यहाँ,
ढलती रात, अकेली बाला, निकल पड़ी तुम कौन, कहाँ ?

पर अबला कहकर अपने को, तुम प्रगल्भता रखती हो,
निर्ममता निरीह पुरुषों में, निःसन्देह निरखती हो!
नारी जिस भव्य भाव का, साभिमान भाषी हूँ मैं।
उसे नरों में भी पाने का, उत्सुक अभिलाषी हूँ मैं।
बहुविवाह विभ्राट, क्या कहूँ, भद्रे, मुझको क्षमा करो,
तुम कुशला हो, किसी कृती को, करो कहीं कृतकृत्य वरो।

यशोधरा खण्डकाव्य में गुप्तजी ने गौतम बुद्ध की पत्नी के प्रश्नों, व्यथा तथा जनकल्याण के प्रति त्याग को चित्रित किया है। इस ग्रंथ में यशोधरा पति से शिकायत करते हुए अपनी सखी से कहती है–

सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते?
मुझको बहुत उन्होंने माना
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना
जो वे मन में लाते।
सखि वे मुझसे कहकर जाते,
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमें भेज देती हैं रण में–
क्षात्र धर्म के नाते।
सखि वे मुझसे कहकर जाते।

'द्वापर' खण्डकाव्य में वे महाभारत की एक विधृता की एक छोटी सी उपेक्षित कथा को उठाकर उसे स्त्री विमर्श के बड़े सवालो से जोड़ देते हैं और इस दृष्टि से वे आधुनिक समाज के स्त्री–पुरुष समानता के सिद्धांत के बहुत बड़े प्रतिपादक के रूप में नज़र आते हैं। हालांकि इन सवालों से वे साकेत, विष्णुप्रिया, यशोधरा आदि अन्यान्य रचनाओं में भी मुठभेड़ करते हैं, किन्तु द्वापर में आकर उनके ये सवाल अधिक तीखे और मारक हो जाते हैं। विधृता का पति जब श्रीकृष्ण के रास में सम्मिलित होने की अनुमति पत्नी को नहीं देता और जिद करने पर उसे मारता है, तो विधृता कह उठती है–

राम–राम, हा! ठहरो–ठहरो यह तुम क्या करते हो?
अबला होकर भी मुझको यूँ बलपूर्वक धरते हो।
लज्जा भी क्या छोड़ी तुमने, छोड़ी जहाँ दया है।
तन नहीं पर मन तो मेरा अपनी गैल गया है।

वह स्त्री विमर्श के कुछ बेहद चुभते हुए सवाल करते हुए कहती है–

अविश्वास, हाँ अविश्वास ही नारी के प्रति नर का,
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं, स्वामी है वह घर का।
उपजा किन्तु, अविश्वासी नर हाय, तुझी से नारी,
जाया होकर भी जननी है, तू ही पाप पिटारी।
जाती हूँ, जाती हूँ मैं, अब और नहीं रुक सकती,
इस अन्याय मरूँ मैं, कभी नहीं झुक सकती।

'विष्णुप्रिया' खण्डकाव्य में गुप्त जी ने चैतन्य महाप्रभु की पत्नी की व्यथा कथा कही है, तो प्रसंगानुसार अन्य रचनाओं में जयसिंह की माँ मीनल दे, कैकेई, कौशल्या, उर्मिला, माताभूमि इत्यादि के माध्यम से महिलाओं की शक्ति की प्रतिष्ठा की है और उन्हें भी समाज में उनका चिरप्रतीक्षित स्थान दिलाने का प्रास किया है। गुप्त साहित्य के अधिकारी विद्वान प्रभाकर श्रोत्रिय गुप्त जी का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं, ''आज से करीब आध–पौन शती पहले गुप्त जी ने बिना स्त्री आंदोलन का तमाशा खड़ा किए, बिना किसी शोर के अपने युग चरित्र के अनुरूप स्त्री सशक्तिकरण की दिशा का जो ऐतिहासिक योगदान दिया, वह उनके विभिन्न काव्यों की अन्तर्वस्तु और छोटे चरित्रों में किसी आग और विकरालता को देखने पर पता चलता है, कुछ प्रसंग और चरित्र तो ऐसे हैं, जो स्वयं उनके अंतर्विरोधों का प्रतिकार करते हैं। यह लेखक के निरंतर आत्ममंथन और गतिशीलता का प्रमाण भी है, जो गुप्त जी के किसी अतीतपोषी स्थिरीकरण का स्वयं ही प्रत्याख्यान करता है।''

यह गुप्त जी की ही सामर्थ्य थी, जो उन्होंने खुलकर यह स्वीकार करने का साहस दिखाया कि हम पुरुष नारी की न सिर्फ उपेक्षा कर रहे हैं, अपितु अपना अपराध उनके मत्थे भी मढ़ने का दुष्कृत्य कर रहे हैं–

ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध, उनके शीश पर हैं धर रहे।

सांप्रदायिक सौहार्द्र एवं सर्व धर्म समभाव भी उनकी काव्य साधना का एक अन्य महत्त्वपूर्ण ध्येय रहा है। इसी कारण उन्होंने राम, कृष्ण, बुद्ध और मुहम्मद की कथाओं को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़कर इन कथाओं को नवीन अर्थ दीप्ति दी है। 'काबा और कर्बला' की भूमिका में वे मुहम्मद साहब की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं–

किया कठोर कुरैश ने, कितना वैर विरोध।
पर उस सक्षम की क्षमा, लेती क्या प्रतिशोध।

सांप्रदायिक सौहार्द्र की इससे बड़ी मिसाल और क्या होगी कि वे इस ग्रंथ के काबा खण्ड में मुहम्मद साहब के आह्वान तथा उनके सकारात्मक प्रभाव का चित्रणकरते हुए लिखते हैं–

''प्रभु समक्ष, सोचो टुक मौन, बड़ा कौन है, छोटा कौन?
तने न भौंह, न खिंचे कमान, उसके जन हम सभी समान।
वीर दिखाओ धीर विवेक, बिछा बड़ी सी चादर एक,
रख उस पर पावन पाषाण, सभी उठाओ, पाओ त्राण।
साधु मुहम्मद साधु सुयुक्ति, मिली हमें संकट से मुक्ति।
हाथ लगावें सब अनिवार्य, करो तुम्हीं संस्थापन कार्य।''

भारत–भारती में वे हिन्दुओं तथा मुसलमानों को सीख देते हुए कहते हैं–

'' हिन्दू–मुसलमान अब छोड़ें, वह विग्रह की नीति।
प्रकट की गई है, अब केवल, वह अपने वीरों के प्रति प्रीति।''

अज्ञेय ने 'स्मृतिलेखा : एक परंपरापोथी आधुनिक राष्ट्रकवि' में गुप्त जी का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, ''दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) जब कहते थे– 'मैं आगे आने वालों का जय–जयकार' तब यह एक आलंकारिक युक्ति नहीं होती थी, क्योंकि सचमुच नए के प्रति उनमें एक अद्‌भुत कुतूहल भी था, एक स्वागत का भाव भी। लेकिन साथ ही नए को कसौटी पर कसते रहना भी वे अनिवार्य समझते थे, क्योंकि अतीत और भविष्य के सम्बन्ध की अचूक पहचान उनमें थी– मैं अतीत ही नहीं, भविष्यत् भी हूँ आज तुम्हारा।' पचास वर्षो से अधिक समय तक हिन्दी जगत पर छाए रहकर भी वे कैसे बिना परंपरा को तोड़े हुए नए चिंतन को भी आत्मसात करते हुए युवतर पीढ़ी के लिए एक चुनौती बने रह सके, यह हर नए लेखक के लिए समझने की बात है। परपरा को तोड़े बिना कैसे आधुनिक हुआ जा सकता है, इसका उदाहरण 'हिन्दू' से लेकर 'यशोधरा' तक उनकी काव्य यात्रा प्रत्यक्ष दिखाती है, बल्कि वह यह भी दिखाती है कि परंपरा को तोड़े बिना कैसे उसे प्राप्त करते हुए उससे मुक्त हुआ जा सकता है और गुप्त जी को मैंने 'प्रसन्न आधुनिक' इसीलिए कहा था। आधुनिकता को बहुत से लोग खण्डित व्यक्तित्व और संत्रास के साथ जोड़ते हैं, लेकिन दद्दा लगातार उस रेखा पर जीते थे, जहाँ यह विरोधाभास निरंतर हल होता चलता है। उन्हें सांस्कृतिक राष्ट्रीयतावादी भी कहा जा सकता है और उतनी ही सच्चाई के साथ मानवतावादी भी और वैष्णव तो वे थे ही। शायद इन विरोधाभासों का लगातार निर्वाह ही उनकी असली चुनौती है और शायद इसलिए एक अतिरिक्त अर्थ में भी वे विरोधाभासों के संगम पर पनपने वाले, इस प्राचीन देश किन्तु नए राष्ट्र के कवि हैं।

इकाई–4

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता मे नवजागरण की अभिव्यक्ति

नवजागरण भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण परिघटना है। नवजागरण के आगमन ने भारतीय समाज को सुषुप्तावस्था से जगाकर उसे अपनी इयत्ता, अस्मिता, गौरव एवं अधिकारों के प्रति सचेत होने का बोध दिया। नवजागरण ने समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था को तो प्रभावित किया ही, साहित्य भी इससे अछूता न रह सका। भारतीय परिप्रेक्ष्य में नवजागरण का सूत्रपात बंगाल से हुआ। हिन्दी साहित्य में 'नवजागरण' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डॉ० रामविलास शर्मा ने सन् 1977 में 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'हिन्दी नवजागरण' पुस्तक में किया। इस पुस्तक में उन्होंने हिन्दी नवजागरण में द्विवेदी जी तथा उनके युग के कवियों के योगदान की विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

पहले नवजागरण की परिस्थितियों पर विचार करते हैं। सन् 1757 की प्लासी की लड़ाई में बंगाल के नवाब सिराजुद्‌दौला की हार होती है और क्लाइव के नेतृत्व में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जीत से मध्यकाल समाप्त होता है और पश्चिम की हवा का पहला झोंका भारत में विधिवत आता है। यद्यपि यह भारत में अंग्रेज़ों की गुलामी की शुरूआत थी, किन्तु इसके बाद प्रेस और समाचारपत्रों के आगमन से विचार स्वातंत्र्य की भी शुरूआत होती है। डॉ० बच्चन सिंह ने ऐसी सरकार को उद्‌धृत करते हुए लिखा है कि सन् 1757 में बंगाल में आधुनिक काल का उदय और मध्य काल का अंत होता है। सन 1803 में कलकत्ता से थोड़ी दूरी पर श्रीरामपुर में वार्ड कैरे अपने साथी पंचानन कर्मकार की सहायता से हिन्दी देवनागरी लिपि के अक्षरों की ढलाई करते हुए पहली प्रेस खोलते हैं। पण्डित जुगलकिशोर शुक्ल 30 मई सन् 1826 को हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदंतमार्तंड' प्रकाशित करते हैं। इससे पहले जेम्स ऑगस्टस हिकी 29 जनवरी सन् 1780 को 'हिकीज़ गजट' या 'कलकटा जनरल एडवर्टाइज़र' अंग्रेज़ी में निकालने के बाद अंग्रेज़ों विशेषकर वारेन हेस्टिंग्ज़ के कोपभाजक बनकर लंदन वापस भेज दिए जाते हैं। यही हाल बर्किंघम के पत्र 'कलकटा जर्नल' का भी हुआ। कुछ सरकारी असहयोग एवं ग्राहकों की कमी के कारण उदंत मार्तंड को भी डेढ़ साल के भीतर 4 दिसंबर सन् 1827 को बंद होने को विवश होना पड़ा। लेकिन शुक्ल जी ने इससे हार नहीं मानी और 23 वर्ष बाद सन् 1850 में वे 'सामदंड मार्तंड' नाम से एक अन्य समाचारपत्र लेकर आते हैं। सन् 1823 में अंग्रेज़ समाचारपत्रों की निष्पक्ष रिपोर्टिंग से बौखलाकर समाचारपत्रों पर कड़े प्रतिबन्ध लगा देती है, जिसका विरोध करते हुए राजा राममोहन राय कलकत्ता उच्च न्यायालय में याचिका दायर करते हैं। इन सब वजहों के परिणामस्वरूप देशवासियों के मन में अपने अधिकारों का बोध जाग्रत होता है तथा उनमें देशहित की भावना हिलोरें लेने लगती है। सन् 1873 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हरिश्चन्द्र मैगजीन के प्रकाशन और हिन्दी के नई चाल में ढलने से हिन्दी नवजागरण का प्रारंभिक दौर पूर्ण होता है। अगले दौर में हिन्दी पट्‌टी में भारतेन्दु मण्डल के कवि लेखक देश की दुरवस्था पर चिंता प्रकट करते हुए अंग्रेज़ों के अच्छे कामों की सराहना तो करते हैं, किन्तु उनके शोषणवादी व्यवहार तथा देश की जनता के प्रति संवेदनहीनता के लिए उनकी आलोचना भी करते हैं। सन् 1900 ई. में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' के प्रकाशन के आरम्भ से हिन्दी नवजागरण का नया दौर शुरू होता है। समीक्ष्य अध्याय में इसी की चर्चा अभिप्रेत है।

द्विवेदी युगीन कविता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक दृष्टि का उन्मेष थी। द्विवेदी जी हिन्दी कविता को ब्रजभाषा की जकड़बंदी से मुक्ति दिलाकर कुछ परंपरावादी कवियों की इस धारणा को निर्मूल करना चाहते थे कि खड़ी बोली में गद्य तो लिखा जा सतका है, परन्तु काव्य लिखने हेतु यह बोली उपयुक्त नहीं है। समस्यापूर्ति, नायिकाभेद, अति श्रांगारिकता जैसी काव्य रूढ़ियों का विरोध करते हुए आचार्य द्विवेदी जी ने साहित्यिक दृष्टि में व्याप्त उच्छृखलता को नियंत्रित एवं अनुशासित किया। सन् 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादक बनने के बाद उन्होंने भाषा के परिमार्जन तथा नवीन विचारधारा के कवियों को प्रोत्साहित कर उन्हें नवीन कथ्य–तथ्य के अनुरूप काव्य सृजन हेतु आवश्यक मंच देने का काम किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मंच सरस्वती पत्रिका बनी। इस दौरान वे सभी विषय साहित्य सृजन के अंग बने, जिनका साहित्य में अभी तक महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं था। रूढ़िवादिता पर चोट, स्वदेश प्रेम, उपेक्षित पौराणिक पात्रों को केन्द्र में लाना, विधवा विवाह, अस्पृश्यता उन्मूलन, बाल विवाह विरोध, बेमेल विवाह विरोध, दहेज प्रथा विरोध, दीनहीन के प्रति करुणा, नारी सम्मान आदि नए विषयों पर कविताएँ लिखने का कार्य इस युग में आरंभ हुआ। इन विषयों पर कविता लिखे जाने का परिणाम नवजागरण की तीव्रता में वृद्धि के रूप में सामने आया।

द्विवेदी युग के कवियों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, बालमुकुंद गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', राय देवीप्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, लाला भगवान दीन, रामचरित उपाध्याय, रूपनारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गिरिधर शर्मा 'कविरत्न', सत्यनारायण 'कविरत्न' और कामताप्रसाद गुरू के नाम अग्रगण्य हैं।

आचार्य द्विवेदी ने भाषा का परिष्कार करते हुए संस्कृत, अंग्रेज़ी, बंगला तथा मराठी भाषाओं की विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों को ग्रहण करते हुए हिन्दी के परिमार्जन का सफलतापूर्वक निष्पादन किया। संस्कृत से उन्होंने तत्समनिष्ठ शब्दावली ली, मराठी से संस्कृत के समनुरूप वृत्तात्मकता एवं गद्यात्मक काव्य परिवेश अनेक मराठी विचारकों की जीवनी लेखन के माध्यम से लिया; अंग्रेज़ी से विषयगत पदविन्यास शैली तथा बंगला से नवीन विषय और उपेक्षित पात्र ग्रहण किए। इन सबके समन्वय से खड़ी बोली हिन्दी को नया संस्कार मिला और इसने नवजागरण हेतु नई जमीन तैयार करने का काम किया। डॉ० रामविलास शर्मा हिन्दी नवजागरण के कई चरण मानते हैं। उनके अनुसार पहला चरण गदर अथवा 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है, दूसरा चरण भारतेन्दु युग है और तीसरा चरण सन् 1900 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके सहयोगियों के कार्यकाल से निर्मित होता है। वे यह भी स्पष्ट करना नहीं भूलते कि सन् 1920 में आचार्य द्विवेदी इससे अलग हो जाते हैं। इन बीस सालों में आचार्य द्विवेदी अपने सहयोगियों के साथ मिलकर साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूँकते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में लिखते हैं, ''इस तरह नवजागरण, जो 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेन्दु युग में और व्यापक बना, उसकी साम्राज्य विरोधी और सामंत, साम्राज्यविरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में पुष्ट हुई।

डॉ० शम्भुनाथ, डॉ० रामविलास शर्मा की हिन्दी नवजागरण की पाँच विशिष्टताओं की ओर संकेत करते हैं। उनके मतानुसार डॉ० रामविलास शर्मा की पहली विशिष्टता है कि उन्होंने इसे तेरहवीं शताब्दी से ही विस्तृत निरंतरता में देखा, दूसरी बड़ी विशिष्टता है कि इसका सम्बन्ध हिन्दी जाति के निर्माण और आत्मपहचान से स्थापित किया। तीसरी विशिष्टता यह है कि आधुनिक नाटककार शेक्सपीयर के काल का उदाहरण रखकर वे स्पष्ट करते हैं कि आधुनिकता का सम्बन्ध मशीनी उत्पादन से नहीं होता। सामंती व्यवस्था के भीतर व्यापारिक हस्तशिल्प, कृषि, वाणिज्य, बाजार और नगर ही व्यापारिक पूँजीवाद की आधारशिला के लिए पर्याप्त हैं। चौथी बडी विशिष्टता यह है कि रामविलास शर्मा हिन्दी नवजागरण के हिन्दी जातीय संदर्भ का उद्घाटन करने की प्रक्रिया के संदर्भ में वस्तुतः रिनेसाँ से लगातार एक दूरी बनाते चले गए। उन्होंने प्राच्यविद्यावाद को चुनौती देते हुए, लगभग हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में घोषित किया कि 'भारत में अंग्रेज़ न आए होते तो भी सांस्कृतिक नवजागरण सम्भव था।' इस नवजागरण की पाँचवीं सबसे बड़ी विशेषता है कि इसे पहले चरण में सामंतविरोधी और दूसरे चरण में सामंतवाद, साम्राज्यवाद, पृथकतावाद, रीतिवाद, नस्लवाद और संकीर्ण जातीयतावाद का विरोध करते हुए भारतीय राष्ट्रीयता और संस्कृति के भीतर ही हिन्दी जाति की परिकल्पना की गई।'' ये सभी छह आधार द्विवेदीयुगीन कविता में भी कमोबेश देखने को मिलते हैं।

शिवदानसिंह चौहान 'छायावादी कविता में असंतोष भावना शीर्षक से अपने निबंध में नवजागरण की चर्चा करते हुए लिखते हैं, ''भारत के नवोत्थित पूँजीवाद द्वारा प्रेरित राष्ट्रीय जागरण की प्रथम स्वाभाविक प्रतिक्रिया साहित्य में भारतेन्दुकाल से द्विवेदी काल तक की इतिवृत्तात्मक कविता के रूप में व्यक्त हुई। कतिपय राजनीतिक और सामाजिक सुधार ही मुक्ति भावना के चरम लक्ष्य थे। मैनेजर पाण्डेय भी आचार्य द्विवेदी को भारतेन्दु के बाद हिन्दी नवजागरण का दूसरा निर्माता मानते हैं।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता की विचारधारा को सर्वश्रेष्ठ ढंग से धरातल पर उतारने का काम राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया। उन्होंने द्विवेदी जी की भावना के अनुरूप कविता में खड़ी बोली का प्रयोग करते हुए पुरातन का नवीन संदर्भों में अन्तर्भाव किया तथा नवजागरण की अपेक्षा के अनुरूप सुषुप्तप्राय हिन्दी पट्टी को जागृत करने में महती भूमिका का निर्वाह किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गुप्त जी के विषय में लिखा है, '' गुप्त जी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि हैं; प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने (या झीमने) वाले कवि नहीं। सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है। प्राचीन के प्रति पूज्य भाव और नवीन के प्रति उत्साह दोनों इनमें है।''

आलेख :

बाजारवाद बनाम पुस्तकें

डॉ० सुनीता अवस्थी
प्राध्यापिका, रा० एस० डी० महाविद्यालय,
अजमेर (राजस्थान)
मो०–08955554969

वर्तमान समय अजीब सी भागदौड़, आपाधापी और छद्म सी संस्कृति का समय बनता जा रहा है। दरअसल बाजार को चाहिए उसके हिसाब से चलने, दौड़ने, काम करने वाले चुस्त दुरुस्त लोग। तभी आप देखते होंगे कि युवाओं से कपड़े, हावभाव में दिखते अधड़े स्त्री–पुरुष अपने आसपास। आर्कषित करो, बेचो और निकल जाओ में से ''निकल जाओ'' की जगह है ''जम जाओ'' और उपभोक्ता को बाहर निकाल दो। ऐसे माहौल में सोच बदला और सही समझ से संतुलन बनाकर चलना आवश्यक है। यही सोच अधिकांश भागते–दौड़ते मनुष्य, हर आयु वर्ग की भी है। उनमें से कुछ के पास संसाधन, साधन और दृष्टि तो है परन्तु समय का अभाव है। वह समझना चाहता है बाजार की चाल ढाल, घात–प्रतिघात को और बचाए रखना चाहता है अपनी मनुष्यता, संवेदनओं और हँसी को। पुस्तकें ऐसे में सही और सटीक मार्गदर्शक मित्र और सच कहूँ तो गुरु होती हैं। ऐसी ऐसी पुस्तकें हैं जिन्हौंने भारत में भूमंडलीकरण के खतरों, दुष्परिणामों और भारतवासियों की अगले पचास वर्षों की स्थिति का पूरा खॉका खींच दिया है 1 और जो अबतक हो चुका है वह उनमें पूरा दर्ज है पहले से ही, तो क्या बाजार ज्योतिषी बनता जा रहा है? नहीं बल्कि लेखकों, विचारकों ने दुनिया के अन्य हिस्सों में हमसे पूर्व आए बाजारवाद के हमले और उसके दुष्प्रभावों का अध्ययन किया है। उसके आधार पर वह बताता हैं इस बाजार की दशा और दिशा तथा इसका हमारी संस्कृति पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को। इसके अतिरिक्त एक अच्छी पुस्तक स्ट्रेस बॅस्टर (तनाव दूर करने वाली) होती है। वह आज के दौर की तनाव भरी दिनचर्या, मशीनी होती जिदंगी में आपको चंद मिनटों में ही तनावरहित कर देती है।

एक भ्रांति बाजार ने भी और कुछ तथाकथित बड़े लेखकों ने फैला रखी है कि गंभीर तथा अच्छी पुस्तकें वो हैं जो समझ न आए, जिसकी भाषा ऐसी हो कि जैसे मंगल ग्रह की भाषा। नतीजतन जो आम व्यक्ति है वह उस टाइप की पुस्तक देखता है, पलटता है, चंद पन्ने पढ़ता है और सब कुछ अपने ऊपर से निकलता पाता है। फिर वह पुस्तकों से हमेशा के लिए तौबा कर लेता है। जो कसर बच जाती है उसे बड़े नाम भी और कुछ स्वयंभू युवा स्थापित साहित्यकार अपने प्रभा मंडल (चार आने की मुर्गी बारह आने का मसाला टाइप) से दूर कर देते हैं। वह इस आम व्यक्ति, पाठक से न जाने क्यूँ दूरी बना लेते है। कैसी हास्यास्पद बात है कि वह अपने लेखन में उन्हीं आम लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं पर उनसे ही अपने आपको काटते जाते है (इस पर आगे और देखें)। तो फिर बाजारवाद, भूमंडलीकृत, विकृत अर्थव्यवस्था का मारा आज का युवा ही नहीं हर आयु–वर्ग का व्यक्ति कहाँ जायें? क्या करें अपने मन में उमड़ते प्रश्नों, समस्याओं और एक जरुरी तत्व मनोरंजन का? अधिकांश प्रकाशकों की भूमिका पर टिप्पणी करना मगरमच्छ की पीठ खुजलाने जैसा है। पर फिर भी कुछ संस्थाओं से पुस्तक मेले और उनमें किताबों की उपलब्धता, बिक्री के आँकड़े संतोष पैदा करते हैं।

पुस्तक और पाठक के बीच खड़ी बाधाएँ : लिखे शब्दों को हमारी प्राचीन संस्कृति में अक्षर ब्रह्म अर्थात् कभी नष्ट नहीं होने वाला, अजर, अमर ईश्वर माना है। भारत में ही सबसे अधिक, लिखने पढ़नें वाले व्यक्ति हैं। लेकिन कुछ अड़चने रुकावटों की वजह से किताब, पत्रिकाऐं आम व्यक्ति की पहुँच से दूर हैं। पहले तो यही स्पष्ट कर दूँ कि घिसी–पिटी बाधाओं का उल्लेख मैं नहीं करुगाँ बल्कि जो हकीकत है उसको ही बता रहा हूँ।

(अ) दबंग, शरीफ और शराती पुस्तकें : कुछ पुस्तकें घमकाती, डराती, आंतकित करती हैं। पुस्तकों की यह तीन प्रमुख श्रेणियाँ हैं। अपने चारों ओर सूर्य की गरमी पैदा करती है जिसमें एक सीमित दायरे तक वह जाती है, फिर हमेशा की तरह लाइब्रेरी की सुकून भी अलमारी में, ए.सी. में बंद होकर रह जाती है, अपने लेखक को दिल्ली, पटना, भोपाल, इलाहाबाद, वाराणसी, राँची से देश के छोटे शहरों में लाने के लिए। अंततः लेखकार, प्लेन टिकट या ए.सी. ट्रेन टिकट, मानदेय की बात न बनने पर आता नहीं है, और वह किताबें बंद रह जाती है।

वो दबंग किताबें, जिनकी घोषणा उनके दरबारी करते है फँला पुरस्कार, उच्च कोटि के चिन्तक, विचारक की पुस्तक, फँला विवादस्पदा अभी हुए जैसे आशीष नंदी, सलमान रश्दी, तस्लीमा नसरीन, व्यक्ति की पुस्तकें। ऐसी पुस्तकें पुस्तक मेले में दबँगई घमंड ए. के. 47 सी दिखाई पड़ेगी। आपका परम सौभाग्य हुआ तो वहीं अकड़े–अकड़े, किसी से बात न करके, एक सीमित मुस्कान और आँखों से बड़प्पन दिखाते दिख जायेगें उनके रचयिता।

कुछ बाजारवादी मानसिकता के लोग ही उन्हें खरीदते है और लाकर ससम्मान अपने ड्राइंगरुम में सजा देते हैं। जहाँ यह ताजिन्दगी अकड़ी, घमंड भरी रहती है। सोचता हूँ मैं इनका आखिर होता क्या होगा? एक पन्ना भी कोई इन्हें छूकर, खोलकर पढ़ने की जुर्रत नहीं करता और फिर भी यह खुश हैं? आजकल इनके बाद की, इन्हीं जैसी पीढ़ी भी आ रही है जो विदेशी माल को कॉपी करने में माहिर है। साथ में दादागिरी और पगड़ी उछालने में भी विशेषज्ञता रखती है। जिनको जोड़–तोड़, चाटुकारिता से एक एक किताब को तीन–तीन पचास हजारिए पुरस्कार मिल जाते है और यह जिन्दगी भर छोटे नगरों या कस्बों में जाने की सोचते नहीं। हाँलाकि पले, बढ़े, जन्में वहीं हैं।

(ब) शरीफ पुस्तकें : वह है जिनके विषय आम जीवन से, आम व्यक्ति, उसके खतरें, उसकी खुशी, दुःख–सुख से जुड़े है। जो बड़ी सहज, सरल भाषा में इनसे जूझने, लड़ने और जीतने की बात करती है। ऐसी पुस्तकें बताती है कि कैसे तुम अपने स्तर पर ही इस समय में जीते हुए अपनी जड़ों को हरा रख सकते है। यह भी बताती है कि इस विषम समय, हालात से पार पाना बिल्कुल मुश्किल नहीं है। बस थोड़े से हौसले अभिव्यक्ति और गलत के साथ नहीं खड़े होने के सहास की आवश्यकता है। कहानी, कविता, उपन्यासों की यह पुस्तकें अनुभव की भट्टी में तपे कुन्दन से रचनाकारों की होती है। यह संख्या में अधिक होते हुए भी कम जगह पाती है पर पकड़ इनकी सबसे अधिक होती है। पुस्तक मेलों में यह बड़ी दंबग पुस्तकों से दांयी या बांयी ओर करीब पन्द्रह फुट दूर बिखरे ढेर में रखी होती है। आप जब पुस्तक मेले या किताबों की दुकान पर जाए तो अपने सौम्य परन्तु गर्मजोशी भरें शीर्षक, साफ सुधरे आकार से मस्कुराती हुई दिख जाएगीं। इनका मूल्य आपकी जेब को तंग नहीं करेगा

और आप इन्हें पहचानकर दुलारते हुए अपने साथ ले जाना चाहेगें। बशर्ते पुस्तकों के आतंक के प्रभाव से आप मुक्त हों।

यही पुस्तकें आपको अपनी समस्याओं से निजात पाने में मदद तो करती ही है साथ ही मनोरंजन, हास्य से भर देती है। प्यार की कोपलें भी यहाँ फूटती हैं तो खुबसूरत, परस्पर सहमति वाला सेक्स भी आटे में नमक, जितना ब्लैक कॉफी में शक्कर होता है। यह पुस्तक आपको नई दिशा, नई सोच देती है और साथ ही अपने कार्यों, दिनचर्या में बोरियत से बचने का रास्ता भी बताती है। साथ ही अच्छे मित्र तो बनती ही है। यदि आप इन पुस्तकों को पढ़कर उसके लेखक से सम्पर्क करते है तो वह जरुर आपको जवाब देगा और आपका दोस्त बनेगा।

(स) शरारती पुस्तकें : वह हैं जिनमें जानबूझकर आटे बराबर सैक्स और नमक बराबर यह दुहाई होती है कि यह तो हकीकत है, विमर्श है, मैंने भोगा है तो लिखा है किसी को क्या ऐतराज? दूध में उबाल की तरह ऐसी पुस्तकें आती हैं, और फिर खो जाती हैं। बुक फेयर, दुकानों पर इनकी जगह दबंग पुस्तकों के करीब होती है। कई जगह तो यह दबंग पुस्तकों को चूमती उनसे दबती सिसकारियाँ भरती दिखाई पड़ती हैं। इसके रचनाकार ज्यादातर पुस्तक मेलों में दबंगो के साथ–साथ घूमते दिखाई पड़ जाते हैं। इनका मकसद सिर्फ हंगामा खड़ा करना होता है, तस्वीर बाद में इनकी ही बदल जाती है। यही हंगामा भी कर देते हैं कि आपने मुझे नकलची कॉपी कैट कैसे कहा? पर यह हंगामा दो वर्ष की सेवा मेवा खाने के बाद, नए दबंग के साथ जाने की तैयारी में होता है।

फिर भी प्रबुद्ध हो, सामान्य हो या पहली बार पाठक हो वह इन बातों को ध्यान में रखे तो अपने लिए मोती तलाशने में कामयाब होंगे है। फिर तो पुस्तकों की जादुई दुनिया उसके लिए खुल जाती है। यहाँ क्या अद्‌भुत वितान है, सम्मोहक दुनिया, प्रेम, लगाव है तो वही निर्मम यथार्थ भी। नक्सलवाद, स्त्री का यथार्थ, उसकी सोच, प्यार, उसका जुनून, उसकी नफरत है तो दूसरी ओर गाँव कस्बा और उससे जूझता, डूबता, उतराता किसान है। वह किसान जो गाँव की मिट्टी में साँस लेता है, जिसने अपना पूरा जीवन गाँव की आबो हवा को दिया है। ऐसी चौहत्तर प्रतिशत आबादी है गाँवों की जो नहीं कहती कि गाँवों को खत्म कर देना चाहिए। अपनी धूर्तता, चाटुकरिकता, अवसरवादिता से अपने लिए बिना वजह ध्यान माँगने वाले लोग ही कर सकते है, 4 पर गाँव का व्यक्ति, किसान, दलित, स्त्री बच्चा यही चाहता है गाँव–गाँव में साक्षरता लोकसंस्कृति और आधारभूत (बिजली, पानी) सुविधाओं के साथ पुस्तकें भी हैं। उनका स्थान हो और उनके पास पर्याप्त समय हो तो वहाँ पुस्तकों का पठन–पाठन वाचन हों, हमारे लेखक वहाँ जाऐं। उनको सुने, गुने जोड़ें और देखें हमारे गाँव का सीधा सादा व्यक्ति, वैचारिक दृष्टि, नैतिकता और प्रतिबद्धता में हम सबसे आगे है। लेकिन क्या लेखक, प्रकाशक वहाँ शिविर लगाऐगे? शिमला, टाइगर अभ्यारण, गोआ, दिल्ली, इलाहाबाद, 5 भोपाल सर्वसुविधा सम्पन्न जगह भी जाओं पर मेरे देश की मिट्टी में गहरें जुड़े, प्रतिबद्ध मेरे गाँवो के लोगों के पास भी तो हो। वहाँ तीन दिवसीय शिविर लगाइए जिसमें सभी युवा, वरिष्ठ लेखक जाऐं और जो साधारण सुविधाऐं हैं या नहीं है उसमें ही बिना शिकायत, बिना भेदभाव के रहें तो मुझे लगता है साहित्य का, पुस्तकों का और सबसे बढ़कर इस देश के आम जीवन जीने वाले व्यक्ति का और हम लेखकों का भी वास्तव में भला होगा।

पुस्तकों व पाठकों के बीच सेतु : पुस्तकें, अच्छी सोच, वैचारिक संतुष्टि भी देती है और हमारी दृष्टि को व्यापक करती है। उन्हें पाठकों तक पहुँचाने में जो बाधाएँ थीं वही अब धीरे–धीरे खुद को सुधार रही है। प्रकाशक पुस्तकों की कीमत कम रख रहा है। पेपर बैंक संस्करण ला रहा है। वाग्देवी, राजकमल और जयपुर का बोधि प्रकाशित ने करीब सवा सौ रुपये (एक मीडियम साइज पिज्जा की कीमत) में दस अच्छे लेखकों की पुस्तकों (करीब हजार पृष्ठ) को आपको घर बैठे दे रहा है। वहाँ, कुछ लेखक अभी भी अपनी जड़ता, अहंकार और अपने को जमीन से दो हाथ ऊपर मानने की मानसिकता से मुक्त नहीं हो सकें हैं। वह आरामतलब, सुविधा भोगी जीव सोचता है उसका रखरखाव, मान सम्मान शासन, समाज और आम जनता का दायित्व है। पुस्तक लिखकर (ऐसी क्लिष्ट भाषा, पहुँच से बाहर दाम) उसने पहाड़ उठा लिया है। ऐसे लोगों को चाहिए वह अपने शहर, अपने मुहल्ले यहाँ तक की आगे पीछे की गलियों में कभी शाम, सुबह, अकेले चले जाए और देखलें कितने लोग उन्हें ''परनाम'' करते हैं और कितने उनकी व किताब के नाम से परिचित है? सारी सच्चाई सामने आ जाएगी। नतीजतन अच्छी किताबें पाठकों तक नहीं आ पातीं। लेखक अपनी किताब समीक्षा और प्रमोशन के लिए भले ही न दे पर अपने शहर के स्कूल, कॉलेजों, घनी बसी बस्तियों, वहाँ की सामाजिक संस्थाओं में जरुर दे। वहाँ भावी पीढ़ी के साथ–साथ अध्यापकों को भी पुस्तक रोचक ढंग से अंश पढ़कर सुनाएँ। बजाए आपसी राजनीति करने और उसमें मेरा नाम क्यों नहीं धन्यवाद दिया जैसे–जैसे व्यर्थ के विवाद में पत्रिकाएँ भी ऐसे विवाद, वितंडा, सनसनी उत्पन्न न करें।6

सुना है यूरोप के कई शहरों के सैल्फ सर्विस की किताबों के शैल्फ है। हम यहाँ अपनी कॉलोनियों में एक जगह अलमारी में किताबें रखे, सभी निवासी मिलकर ही। एक व्यक्ति सुबह–शाम देखभाल कर ले। अपने आप इच्छित पुस्तक पढ़ने वाला व्यक्ति निकाले और पढकर कुछ दिनों बाद वापस वहाँ रख दें। इसी तरह हम बाजारवाद से अपनी जमीन, अपना अस्तित्व बचा भी पाऐंगे और टूटते जा रहे हमारे परिवार, स्त्रियाँ, नौजवानों को गुमराह होने से बचाऐंगे।

लेखक की कहानी, कविता का पाठ, अनौपचारिक रुप से मुहल्ले, बस्तियाँ में ही उसमें सवाल जवाब है सभी विषयों पर। हर आयु वर्ग के स्त्री पुरुष अपने प्रश्न पूछे तो कैसे नहीं पुस्तक, संस्कृति, विचार, सोच परिपक्व होगा।

मैंने कई शहरों, कस्बों में प्रयास किए सफलता मिली। लोग जुड़े जागरुक हुए और लेखकों को भी पसंद आया। इंटरनेट ई. बुक्स भी पुस्तकों के प्रति उत्सुकता बढ़ाती है। उनके माध्यम से पुस्तकों को जाना जाए और मंगवाकर पढ़ा जाए तो अद्‌भुत है। आशा है कि बहुत जल्दी देश के हर गाँव, कस्बे में कौन ऐसी कई गोष्ठियाँ होने लगेगी। यह समय पुस्तकों, विचारों ओर सोच को बढ़ावा देने का है। इसमें हम सबकी सकरात्मक, उपस्थिति सुनिश्चित होनी चाहिए।

संदर्भ

1. समयाँतर, दिसम्बर, जनवरी 2013, पृष्ठ 8,9,15,27,36
2. जयपुर लिटरेचर फैस्टीवल रिपोर्ट, 27 जनवरी जनसत्ता, राजस्थान पत्रिका, 2013
3. हँस, सितम्बर 12, तस्लीमा नसरीन
4. पाखी, अगस्त 12, पीढ़ियाँ, हँस अक्टूबर 2013 सुधा चौधरी का लेख
5. कई संगठनों, प्रकाशक करते है ऐसे
6. पाखी, दिसम्बर 12 जुलाई 2013 (महुआ, माझी, श्रवण कुमार विवाद) लेख

आलेख

महादेवी की वेदना

संतोष कुमार,
बेतिया, पश्चिम चंपारण

महादेवी छायावादी कवियों में से एक हैं। छायावाद के चार सम्यक्—प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत माने जाते हैं। छायावाद के मुख्य प्रवृत्तियाँ—वैयक्तिक, कल्पनामोह, प्रकृति प्रेम, सामाजिक विद्रोह, अतीत संस्कृति प्रेम, राष्ट्र प्रेम, रहस्यवादिता, बौद्धिकता एक प्रयोग, कोमलकान्त पदावली, प्रयोग, छंदहीनता (blank verse) आदि हैं।

उपर्युक्त सभी विशेषताएँ प्रायः प्रत्येक छायावादी कवियों में पायी जाती हैं, परन्तु प्रत्येक कवि की कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे प्रसाद में सौंदर्य परख की दृष्टि तथा पारंगत उपभोक्ता की प्रवृत्ति अधिक है, तो निराला में ओजपूर्ण सौंदर्य दृष्टि तथा विद्रोहात्मक अधिक है। महादेवी छायावाद में रहस्यवाद के नाम से अधिक याद की गई हैं, तो प्रकृति संबंधी प्रेम अन्य कवियों में होने पर भी पंत का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है।

इस प्रकार महादेवी में छायावाद की सभी विशेषताएँ नहीं पायी जाती हैं। यहाँ उनमें विद्रोहात्मक प्रवृत्ति तो है ही नहीं। ओज एवं विद्रोह से अलग होकर महादेवी ने रहस्यवाद को ग्रहण किया है और वेदना को अपने हृदय में पाला है। इस प्रकार उनकी प्रमुख दो विशेषताएँ हैं—1. रहस्यवादिता, 2. वेदना भाव, किन्तु इन दोनों का अवलंब बौद्धिकता है, जो छायावाद की मुख्य विशेषता है।

रहस्यवाद—महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री हैं। रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के चिरंतन संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। आत्मा ईश्वर से अलग होती है और तब सृष्टि का निर्माण होता है। दोनों को अलग करनेवाली माया है। माया के खंडन के पश्चात् पुनः आत्मा ईश्वर में विलीन हो जाती है। कबीर ने इसे अत्यन्त ही सुंदर रूपक द्वारा समझाने का प्रयास किया है।

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल—जल ही समाना यह तथ्य कहौं ज्ञानी ।।'

महादेवी वर्मा की कविताओं में ईश्वर तथा आत्मा का प्रत्यक्षतः संकेत तो मिलता है, किन्तु माया का स्पष्ट परिचय नहीं दिया गया है। रहस्यवादिता छायावाद की मुख्य विशेषता है, किन्तु रहस्यवादी कवि या छायावादी कवि नहीं हैं और ना छायावादी कवि रहस्यवादी हैं; क्योंकि रहस्यवादी जानता है कि संसार में एक अलौकिक शक्ति है, जो ईश्वर की शक्ति है। किन्तु छायावादी को उस शक्ति का आभास मिलता जरूर है। किन्तु वह जान नहीं पाता कि वह शक्ति किसकी है? पंत के शब्दों में—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार चकित रहता शिशु—सा नादान।
विश्व की पलकों पर सुकुमार विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रों से कौन, निमंत्रण देता मुझको मौन।

(पन्त की कविता 'मौन निमंत्रण' से)

किन्तु महादेवी वर्मा उस अलौकिक को पूर्णतः जानती है, इसलिए उनका कहना है कि—

'प्रिय चिरंतन है सजनि, क्षण क्षण नवीन सुहासिनी मैं ।
श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिर घन
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध—सा बन,
छिप कहाँ उसमें सकी बुझ—बुझ जली चल दामिनी मैं ।।'

(महादेवी की कविता 'प्रिय चिरंतन है सजनि' से)

इस प्रकार रहस्यवादी कवियों ने आत्मा और परमात्मा के संबंध को पति—पत्नी के रूप में व्यक्त किया है। महादेवी ने भी इसी रूपक को ग्रहण किया है, जिस प्रकार पति से अलग होकर पत्नी विरह में दुःख उठाती है और सर्वदा उस प्रियतम से मिलने के लिए सचेष्ट रहती है, उसी प्रकार रहस्यवादी कवि की आत्मा भी ईश्वर की आकांक्षा करती है। महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री हैं। इसलिए इनमें वेदना का होना स्वाभाविक होता है। महादेवी ने अपने प्रारंभिक जीवन का परिचय देते हुए कहा है—

'स्वर्ग का था नीरव उच्छवास, देव—वीणा का टूटा तार
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार, रत्न वह प्राणों का शृंगार;
नयी आशाओं का उपवन, मधुर वह था मेरा जीवन।'

(महादेवी की कविता 'स्वर्ग का था नीरव उच्छवास' से)

किन्तु इसी बीच कवयित्री को किसी सम्मोहन तान का स्वर सुनाई पड़ता है और इनके संपूर्ण जीवन में माया का साम्राज्य स्थापित कर देता है—

'अलक्षित सा किसने चुपचाप, सुना अपनी सम्मोहन तान।
दिखाकर माया का साम्राज्य, बना डाला इसको अज्ञान।।'
(महादेवी की कविता 'स्वर्ग का था नीरव उच्छवास' से)

और तब तो प्रियतम का दूर से संकेत भी मिलने लगा। स्वप्न में उसका दर्शन भी होने लगा और नींद में उसका स्पर्श भी संभव हो सका है। वह प्रियतम जीवन के मादक वेला में उपस्थित हुआ था—

'निशा को धो देता राकेश, चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास, बता दो मधुमदिरा का मोल।'

.....

झटक जाता था पागल वात, धूलि में तुहिन कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आये थे इस पार।
(महादेवी की कविता 'विसर्जन' से)

किन्तु प्रिय के आगमन से जो प्रसाद इनको मिला, वह यही था—

'बिछाती थी सपनों के जाल, तुम्हारी यह करुणा की कोर,
गयी वह अधरों की मुस्कान, मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।
इन ललचायी पलकों पर, पहरा था जब वीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का।'
(निहार की रचनाएँ)

और तब से—

'गये तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण,

कितनी बीती पतझड़, कितने मधु के दिन आये।
मेरी मधुमय पीड़ा को, कोई पर ढूँढ़ ना पाये।'

इसी प्रकार महादेवी वर्मा कहती है कि—
'जीवन है उन्माद तभी से, निधियाँ प्राणों के छले।
माँग रहा है विपुल वेदना, के मन प्याले पर प्याले।'

महादेवी वर्मा पीड़ा को पालना चाहती है, इससे छुटकारा लेना नहीं चाहती। इसलिए उन्होंने बार–बार कही है कि—
'मैं मन्दिर का दीप, मुझे नीरव जलने दे (या)
उनको पीड़ा में यहाँ ढूँढी, उनमें ढूँढ़ेगी पीड़ा।'

किन्तु महादेवी के इस वेदना पर आलोचकों ने आक्षेप किया है, कुछ ने तो इसे सहज हृदय जन्य पीड़ा माना है। किन्तु कुछ आलोचकों ने महादेवी के इस वेदना को बौद्धिक या काल्पनिक स्वीकार किया है। प्रतिरोध की संस्कृति और साहित्य में परमानंद श्रीवास्तव ने 'महादेवी : स्त्री कल्पना– प्रतीक्षा, विस्मय और अवसाद में' आलोचक वाजपेयी को उद्धृत किया है कि—'महादेवी की रहस्योन्मुख कविता भी स्वच्छन्दवाद की व्यापक भूमि पर ही आँकी जा सकती है।' इसलिए महादेवी की वेदना और मुक्ति या विद्रोह के अपने निहितार्थ हैं। महादेवी को पढ़ते हुए वर्जिनिया वूल्फ की किताब 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' याद आती है। प्रेम में मुक्ति बड़ी मुक्ति है—
'सुधि विद्युत की तूली लेकर, मृदु मोम फलक–सा उर उन्मन,
मैं घोल अश्रु में ज्वालाकण चिर मुक्त तुम्हीं हो जीवन में,
बंधन हित विकल दिखा जाती।' (पृ0 संख्या 47)

करुणा की एक अंतर्धारा उनके जीवन में है। दार्शिक एकाग्रता उच्च स्तर की है। जीवन की चाह तीव्र है, क्योंकि तृप्ति में जीना वे नहीं चाहती, तृप्ति में वस्तुतः वह जीवन मानती ही नहीं। उनके वेदना का कोई मनोवैज्ञानिक कारण भी नहीं हो सकता है। पर उसकी सत्ता अप्रधान भी हो सकती है। इस दुःखमूलक वेदना परक जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि में सामाजिक जीवन की विशेषताएँ और किसी सीमा तक जीवन की असफलताएँ भी कारण है, किन्तु कवयित्री ने इसे दार्शनिक और आध्यात्मिक बना दिया है। महादेवी का समस्त काव्य वेदनामय है। यह वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक जगत की है, जो उसी के लिए सहज संवेद्य हो सकती है, जिनसे उस अनुभूति क्षेत्र में प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दुःख की भी संज्ञा देती हैं, 'जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।' किन्तु विश्व को एक सूत्र में बाँधनेवाला दुःख सामान्यतया दुःख ही होता है, जो भारतीय साहित्य की परंपरा में करुण रस का स्थायी भाव होता है। महादेवी ने इस दुःख को नहीं अपनाया है। कहती तो हैं कि 'मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह, जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधनों में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन के पड़े हुए असीम चेतन का क्रंदन है।'

महादेवी को वेदना के चरम सीमा पर दुःखवाद और सुखवाद में कोई अंतर ही नहीं रह जाता। उनके जीवन में पीड़ा की अनुभूति है, किन्तु इसी में उन्हें आनंद की प्राप्ति होती है। जैनेन्द्र के शब्दों में—

'वेदना में घुलना या न घुलना मेरे विचार में यह आदमी के अपने निर्णय की बात नहीं है। यदि कोई नहीं घुलता तो कहना होगा कि वेदन की मात्रा पर्याप्त कम है। महादेवी जी वेदना में घुल गयी हैं, ऐसा मैं भी नहीं मान पाता। इसमें मुझे मानना होता है कि वेदना वह समग्र नहीं किंचित् बौद्धिक है, बुद्धि जानती है, इसलिए घुलने नहीं देती यानी वह भक्ति से भिन्न है। भक्ति में विह्वलता है, महादेवी प्यास को चाहती मालूम होती है। इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होंने जाना नहीं है। घायल घाव नहीं चाहता, जो अभी घाव ही चाहता है। मालूम होता है कि उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढ़ती है, इसका अर्थ विकलता उतनी अनुभव नहीं करती।'

इस प्रकार समग्र रूप में महादेवी में वेदना की प्रधानता होते हुए भी उनकी वेदना बौद्धिक धरातल पर ही स्थिर है, इसलिए वे कहती हैं—
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद भी मेरी अचल निस्पंद कण–कण में,
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहासिनी भी हूँ।

महादेवी की वह विह्वलताएँ नहीं है, जो कबीर में हैं। महादेवी वर्मा कहती हैं—
सजनि मधुर निजत्व दें, कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं!
(प्रिय चिरन्तन है सजनि)

महादेवी की वेदना से प्रभावित होकर अधिकतर आलोचक उन्हें मीरा के कोटि में रखते हैं, किन्तु जहाँ मीरा और महादेवी में कुछ साम्य है, वहाँ वैषम्य भी अधिक है। जानकी वल्लभ शास्त्री का कथन है कि महादेवी की काव्य वेदना मीरा की संवेदना प्राप्त करने की सर्वथा अधिकारिणी है। क्योंकि दोनों के भावों में अनेक स्थलों पर साम्य है। महादेवी कहती हैं—
जो तुम आ जाते एक बार,
किन्तु करुणा कितने संदेश, आँसू लेते वे पथ पखार।

मीरा कहती हैं—
कोई कहियो रे पिया आवन की, आवन की मन भावन की

प्रियतम के वियोग में महादेवी का जीवन भी पावस ऋतु बन गया है—'मैं नीर भरी दुःख की बदली।' तो मीरा कहती है—'ये दोऊ नैन कहाँ नहीं मानें, नदिया बहे जैसे सावन की।'

जानकी वल्लभ शास्त्री के शब्दों में, 'महादेवी अरूप की आराधिका है, तो मीरा रूप की राधिका। महादेवी कलाकार हैं, मीरा तदाकार। मीरा ने अनुभव किया था, देखा था, स्पर्श किया था। महादेवी ने अध्ययन, मनन और चिंतन किया है। मीरा ने प्राणों में गा उठती हैं, महादेवी हृदय के तारों को छूकर झंकृत कर देती हैं।'

जैनेन्द्र ने दोनों में कुछ मौलिक समानांतर देखते हुए अनेक भेदों की ही कल्पना की है। महादेवीजी मेरे लिए समकालीन है, मीरा ऐतिहासिक है। महादेवीजी की पीड़ा चाहकर अपनायी हुई है, मीरा की अनिवार्य है। मीरा अपने में विवश और विकल है। महादेवी जी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढ़ती है, मीरा तो अपने गिरिधर गोपाल के पीछे सारी लाज लूटा बैठी है। महादेवी के लिए कोई गिरिधारी इतना मूर्त और वास्तविक नहीं बन पाया है यानी अपने इष्ट को वह विचाररूप में ग्रहण कर सकती है, इस प्रकार महादेवी और मीरा में वेदना अलग–अलग है।

समीक्षा

कला और वेदना के रोमानी कथाकार
निर्मल वर्मा

अभिजित सिंह
साहा पाड़ा, कलकत्ता

'कला इसलिए जरुरी है कि आदमी दुनिया को समझ सके और बदल सके। लेकिन कला इसलिए भी जरुरी है कि उसमें जादू (आकर्षण) अंतर्निहित होता है।'' 1 – ॲर्स्ट फिशर

निश्चय ही निर्मल के लिए कहानी (कला) की यही जरुरत रही होगी या कहें कि– आदमी के लिए–'दुनिया को समझने' के सरोकार से इनकी कहानियाँ निरंतर जुड़ी रही हैं। क्योंकि 'दुनिया' सिर्फ किसानों, अंचलों या पूँजीवादी और उपनिवेशवाद को व्याख्यायित करने तक ही नहीं मिसटी। अज्ञेय के 'शेखर' ने 'दुनिया' को कहाँ तक विस्तार दिया यह कहने की जरुरत नहीं। कहना न होगा कि निर्मल की कहानियाँ में भी 'परिंदे', चीड़ के जंगल' 'प्यानो की धुन' और 'सुखा' कहीं न कहीं परिवेश के साधन से अंतस के साध्य को विश्लेषित करने का प्रयास है।

निर्मल वर्मा की कहानियाँ स्वातंत्रोत्तर हिंदी कहानी में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। निर्मल नई कहानी के एक ऐसे विशिष्ट कथाकार हैं जिन्होंने कहानी को एक कलात्मक सार्थकता प्रदान की है। उनकी कहानी पुराने या नए अर्थों में रुढ़ कहानी नहीं है। दरअसल निर्मल वर्मा की कहानियाँ जीवन की वे अनुभूतियाँ हैं जिन्हें एकांतिक अनुभूति कहते हैं। समाज के स्थूल और बहुमुखी यथार्थ को ठोस वास्तविकताओं के चित्रण के विपरीत निर्मल की चेतना आधुनिक संदर्भों में निरंतर अकेले होते जा रहे व्यक्ति के अंतर्मन की ओर मुड़ी है। उनकी कहानी–कला में 'यथार्थ' के लिए अवकाश नहीं–ऐसा नहीं कहा जा सकता। यथार्थ के जिस स्तर को वे पकड़ते हैं और जिस वातावरण की बात वे कहानियों में करते हैं, उस स्तर और वातावरण में डूब और भींग कर वे लिखते हैं। फलस्वरुप उनका पाठक उनके शब्दों से गढ़ी अनुभूति से अबाध रुप में एकाकार होता है। कई बार यह भ्रम पैदा किया जाता है कि निर्मल 'भारतीय' संवेदना के कथाकार नहीं हैं। यानी उनकी कहानियों में भारतीय परिवेश, समस्या और वातावरण का अभाव मिलता है। रामदरश मिश्र की पीड़ा उनके शब्दों में साफ झलकती है– ''निर्मल की कहानियों की यह दुनिया हममें निश्चय ही अपने जाने–पहचाने भारतीय सामाजिक परिवेश का अहसास नहीं जगाती। गाँव या शहर के उस आदमी का साक्षात्कार नहीं होता जिसे हम अपने भीतर रोज जी रहे हैं।'' 2 मिश्र जी द्वारा अपेक्षित 'भारतीय सामाजिक परिवेश' कुछ अस्पष्ट सा रह जाता है क्योंकि अगर हम 'भारतीय सामाजिक परिवेश' की वृहत्तर व्याख्या की ओर रुख करेंगे तो हमें समाजशास्त्री अध्ययन के कई स्तरों से गुजरना पड़ सकता है। रामदरश मिश्र की यह अपेक्षा आचार्य भामह के 'शब्दार्थौ सहितौ काव्य' की तरह काफी व्यापक है जिसमें एक निश्चित बिंदु को खोजने में काफी कठिनाइयाँ हैं। लेकिन अगर हम विजयमोहन सिंह के निम्न कथन को देखें तो निर्मल की कहानियों में 'अभारतीयता' के उद्‌गम बिंदु साफ–साफ दिखाई पड़ेंगे– 'उनकी स्मृतियाँ केवल लियोनाल्ड वुल्फ, जेम्स ज्वायस और बेंजामिन फ्रेंकलिन से जुड़ी हैं। व्यास, बाल्मीकि, कालिदास तो क्या–सूर, तुलसी, कबीर और जायसी से भी वे कहीं नहीं जुड़े हैं। तभी अपने देश वापसी पर उन्हें सब कुछ स्मृतिहीन और मृत लगता है।... अपने देश के पर्वतीय शहर, स्वीमिंग पूल और हवा में सरसराते चीड़ वन तो उन्हें नजर आते हैं, लेकिन जो व्यापक गरीबी तथा दरिद्रता, भ्रष्टाचार और बेचैनी है– वह कहीं नहीं दिखाई पड़ती।'' 3 दरअसल हम जब भी किसी कहानीकार या रचनाकार पर बात करते हैं तो प्रचलित सत्यों के उद्‌घाटन की अपेक्षा ही करते हैं। हम ये समझने की कोशिश हीं नहीं करते कि हर रचनाकार की अभिव्यक्ति की तकनीक अलग–अलग होती है। निर्मल कहीं से प्रेमचंद, रेणु या यशपाल की तरह के लेखक नहीं थे और उनसे इसकी आशा करना उनकी रचिनाधर्मिकता के साथ अन्याय करने के बराबर होगा। यर्थाथ के जंगल में भटकते हुए हम संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की कला को हाशिए पर ढकेलने लगते हैं। संवेदना या भावना ही निर्मल की कहानी का साध्य है– तभी तो उनकी कहानियों में घटनाओं और पात्रों से महत्वपूर्ण स्थितियाँ होती हैं, वातावरण होता है। नामवर जी की बात पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि निर्मल की एकात्मीयता का स्तर यथार्थ के माध्यम से भावना नहीं बल्कि भावना के माध्यम से यथार्थ का था। नामवर सिंह के अनुसार निर्मल वर्मा की कहानियों में– 'निसर्ग एक है जिसमें सारे भेद सहज ही मिट जाते हैं। एक हृदय है जो तमाम चीजों को रागात्मक संबंध से जोड़ देता है। कलाकार का एक स्पर्श है जो सारे अनमेल तत्वों को एक 'रूप' में रच देता है।''4

अगर नामवर जी के शब्द उधार लूँ तो निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' को 'नई कहानी की पहली कृति' 5 भी कह कसते हैं। 'परिंदे' कहानी में निर्मल की मनोवैज्ञानिक सूझ–बूझ भी काफी उभर कर सामने आई है। कहानी की नायिका लतिका अपने प्रेमी–कैप्टन नेगी– की मृत्यु के बाद एक पहाड़ी स्कूल में अकेलेपन की जिंदगी गुजार रही है। अपने सहकर्मी डॉ. मुखर्जी के काफी प्रेरित करने पर ही वह दूसरा संबंध नहीं बना पाती, अपनी स्थिति से निकल नहीं पाती। लतिका ही नहीं मि.हयुबर्ट, मुखर्जी आदि सभी पात्रों की अपनी एक

व्यक्तिगत परिस्थिति है, जिसका समाधान सभी चाहते हैं, लेकिन न ढूँढ़ पाने के कारण एब्सर्ड के शिकार हैं। सभी का जीवन एक ही प्रश्न का उत्तर खोज रहा है– 'हम कहाँ जाएँगे?' यही वह प्रश्न है जो कहानी के केंद्र में शुरु से अंत तक बना हुआ है और बिना किसी प्रत्यक्ष या ठोस समाधान के बना ही रह जाता है।

दरअसल निर्मल के पात्रों को अनुपस्थितियाँ बहुत कचोटती हैं। वे इनसे लगभग शापग्रस्त सा दिखाई पड़ते हैं। 'परिंदे' की शुरुआत में निर्मल अपने पात्रों की इस चिंता में सहभोगी होकर उसे स्वीकारते हैं और कैथरीन मैन्सफील्ड की पंक्तियाँ उद्धत करते हैं–

'Can we do nothing for the dead? And for a long time the answer had been-nothing!'

इस संदर्भ में डॉ. वीरभारत तलवार का कहना है– 'दूसरों से न जुड़ पाने, अकेले रह जाने– अलगावबोध की स्थिति को निर्मल ने अपनी कहानियों का मुख्य विषय बनाया है।' 6 'सूखा कहानी के नायक का भी तो परिवार बिखर चुका है। वह भी आंतरिक सूखे का शिकार है। एक सेमिनार में उसका परिचय एक लड़की से होता है, जिससे उसे आत्मीयता मिलती है। वह उसके घर दोबारा लौट आना चाहता है, पर इसी बीच वह मर जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी निर्मल की कहानियों की परिस्थितियाँ, परिवेश, वातावरण, पात्र, तथा पृष्ठभूमि सभी बड़े बेजोड़ बनते हैं। दरअसल सूक्ष्म निरीक्षण प्रकृति के चित्रण में, हर महीने या मौसम के आकाश, धूप रंग आदि के बारे में, नींद, बातचीत के टोन, रोशनी के बिंब, सन्नाटे, डर, गंध, हवा, घर के अंदर या बाहर के वातावरण आदि से लेकर व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, मनोभावों, तथा उनके ऐंद्रित बोध तक के चित्रण में दिखाई देता है। 'कव्वे और काला पानी' कहानी में हम मानवीय आदतों और मनोभावों का भी सूक्ष्म निरीक्षण देख सकते हैं कि कैसे रात के वक्त देहाती इलाकों या पहाड़ी कस्बों में लंबे रुट पर चलने वाली बसों से गुजरने पर– 'कभी किसी बस के गुजरने के बाद मास्टर साहब किताब से सिर उठाकर घड़ी को देखते और लंबी साँस खींचकर कहते, 'यह भुवाली की बस है।' या कुछ देर बाद जब दो बार बस की पों–पों बजती, वे कहते,'यह रामनगर जा रही है।' 'निर्मल की कहानियों में इसी तरह का मनोवैज्ञानिक चित्र कहीं न कहीं अज्ञेय के 'रोज' (गैंग्रीन) जैसी कहानी की याद दिला देता है जिसमें घड़ी के हर घंटे के खड़कने के साथ मालती यंत्रवत उसका समय भी बताती चलती है। दरअसल निर्मल अपनी कहानियों में जो वातावरण क्रिएट करते हैं वही इस तरह की यांत्रिकता को जन्म देती है– अन्यथा मनोविश्लेषणात्मक संतुलन उनकी कथा योजना में सराहनीय है। कथा का कोई भी पात्र कहीं भी अनायास कुंठित हो या परिवेश ज्यादा तनावग्रस्त हो यह निर्मल को स्वीकार्य नहीं। जहाँ पात्रों के कुंठा के चित्रण की आवश्यकता पड़ी भी है वहाँ निर्मल ने उसे 'डिस्क्रिप्टिव' न बना कर सिर्फ 'मेंशन' भर कर दिया है। शायद यही कारण रहा है कि 'परिंदे' कहानी में हयूबर्ट को कहानी के अंत में शराब पीकर लड़खड़ाते (टूटते) हुए दिखाया गया है। लतिका ने तो जैसे अपने दुख को आत्मसात ही कर लिया है। लतिका की स्थिति का अब साधारणीकरण हो चुका है, डॉ. वीरभारत तलवार के शब्दों में– 'लतिका का अकेलापन उसकी स्थिति भर है, ऐसी समस्या नहीं जिससे वह पीड़ित दिखाई देती हो।' 7 कायदे से यहाँ इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि निर्मल अकेलेपन या अलगाव के नाम पर 'कला के लिए कला' का प्रसार नहीं कर रहे थे। उनकी कहानियों में व्याप्त आधुनिक चेतना के मर्म को पकड़ने की जरुरत है। दरअसल बूर्ज्वा व्यवस्था जिस तरह मनुष्यों के बीच अलगाव और अकेलेपन की भावना पैदा करती है, उसी तरह उनसे उनकी अस्मिता–आत्मबोध को भी छिन लेती है। ये दोनों ही समस्याएँ आधुनिक पश्चिमी समाज में पैदा हुई थीं और उन्हीं की चिंता का प्रत्यक्ष विषय बनीं। ये समस्याएँ भारतीय समाज में भी हैं– खासकर महानगरों में– हालाँकि उतने तीव्र रुप में नहीं। हिंदी में इनकी चर्चा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही शुरु हुई। निर्मल ने जैसे अकेलेपन के सवाल को अपनी कहानियों में उठाया, उसी तरह अस्मिता के सवाल को भी उठाया। 'धूप का एक टुकड़ा' कहानी में पति से अलग हो चुकी स्त्री अपने अकेलेपन में जी रही है। वह एक मूक सहानुभूति की तलाश में है। पार्क में एक दूसरे अकेले व्यक्ति से उसकी मुलाकात होती है। दोनों में बातचीत होती है लेकिन वे एक दूसरे के अकेलेपन को दूर करने के बजाए उसे और बढ़ा देते हैं। इस कहानी की नायिका को विवाह के आठ वर्षों बाद यह महसूस होता है कि पति के साथ उसके संबंधों में कोई जीवित अनुभूति नहीं रही। अपने संबंधों की संवेदनशीलता की आदत बदलते जाने को जिस तरह महसूस करती है– कहना न होगा कि वह कितनी खतरनाक स्थिति में पड़ती जा रही है। वीरभारत तलवार के उपर्युक्त कथन के प्रकाश में देखें तो 'परिंदे' की लतिका के लिए भी तो कैप्टन नेगी एक आदत में बदल चुका होता है, जिसे काफी कोशिश करने पर भी डॉ. मुकर्जी बदल नहीं पाते।

'परिंदे' कहानी में पात्रों को अपनी चेतना से भी जूझते हुए दिखाया गया है। सभी पात्र अपनी वास्तविक चेतना को परे हटाकर एक कृत्रिम चेतना या छद्म चेतना के सहारे अपना जीवन–यापन करते हैं और उनकी यह छद्म चेतना ही उन्हें बार–बार अपने अतीत से साक्षात्कार कराती है।

जैसा कि हम पहले भी बात कर चुके हैं कि निर्मल वर्मा की कहानियों में यथार्थबोध सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है जिसे अदृश्य यथार्थ की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि इसे कुछ विशेष क्षणों में ही अनुभव किया जा सकता है एवं परखा जा सकता है। इस संबंध में परमानंद श्रीवास्तव का कहना है– 'निर्मल वर्मा की यथार्थ संवेद्यता आत्मचेतना पर आधारित होने के कारण अधिक गहन और तीव्र है।' 8 'सूखा' का निर्मल वर्मा की एक ऐसी ही कहानी है

जिसमें ये सारी विशेषताएँ मिलती तो हैं लेकिन इस कहानी पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना यह कहानी डिजर्व करती है। 'सूखा' अस्तित्ववादी आग्रहों से ग्रसित आधुनिक युग के तनाव, नीरसता और अकेलेपन से जुझते व्यक्तित्वों के अंदर 'सूनेपन' के पनपने की दास्तान बयान करती है। यह मूलतः आधुनिक युग में टूटती हुई मानसिकता और टूटते हुए जीवन मूल्य को उजागर करती है। कथा का आरंभ एक सेमिनार की तैयारी से होता है। शकुन कॉलेज की नई लेक्चरर है जो सेमिनार की तैयारी में पूरी तरह व्यस्त है। इस सेमिनार में डॉ. दामले और डॉ. सेन के अतिरिक्त विश्व प्रसिद्ध डॉ. देव को भी अपना पर्चा पढ़ना है। इस सिलसिले में जब शकुन डॉ. देव के संपर्क में आती है तो यह समझ पाती है कि नाम और शोहरत तो उनके पास काफी है, लेकिन जीवन–मूल्य उनके जीवन से नदारद है। कथा साहित्य की उनकी अनेक पुस्तकें विदेशी और भारतीय भाषाओं में अनुदित हो कर ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं लेकिन पिछले दस वर्षों में उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा है। इस ठहराव को उन्हीं के शब्दों में समझा जा सकता है। वे शकुन से टाईपराइटर के बारे में कहते हैं– 'कोई बात नहीं, वह बेचारी तो मशीन है... कुछ लोग तो बरसों अटके रहते हैं।' अपने आंतरिक जीवन के सूखे से ग्रस्त वे अपने को दूसरे से संबद्ध करते–करते भी भीगी पलकों की अपनी दुनिया में लौट आते हैं। क्योंकि भीगी पलकों की दुनिया उनकी अपनी निजी है। संवेदनशील भावों पर यांत्रिकता के हावी हो जाने के कारण व्यक्ति के आंतरिक जीवन में बिल्कुल सूखा पड़ जाता है। शकुन भी इस सूखे का शिकार है। तभी तो अपनी माँ से खुद की तुलना करते हुए वह कहती है– 'मैं अपनी माँ को देखती थी, जिन्होंने दूसरी क्लास से आगे कुछ भी नहीं पढ़ा था– और उनके पास कुछ ऐसा था, जिसके सामने मैं अपने को बिल्कुल वंचित पाती थी। कहीं कुछ गलत था, लेकिन मुझे पता नहीं चलता था वह क्या है?' कहानी में रजत भी एक पात्र है जो उन स्थानों का भ्रमण करने जाता है जहाँ पर सूखा पड़ा है, लेकिन यहाँ तो शकुन और डॉ. देव का समूचा जीवन ही सुखे से ग्रस्त हो चुका है। चीनी भिक्षु द्वारा सत्य का मार्ग पूछने आई वृद्धा को दिया गया उत्तर– 'वही रास्ता है, जहाँ से तुम आई हो।' – तो ये उत्तर डॉ. देव पर भी लागू होता है। जिस जीवन से वे कट गए हैं सत्य का मार्ग कहीं उसके बीच से ही हो कर गुजरता है। कटकर हताशा और निष्क्रियता का सूखा– जिसे वह स्वयं बाहर के सूखा के विरूद्ध अंदर का सूखा कहते हैं– तो वही अंदर का सूखा उनकी या किसी और की भी नियति हो सकती है। डॉ. देव जब पार्टी में पहुँचते हैं तो वहाँ पर वे खुद को काफी मिसफिट पाते हैं, लेकिन शकुन द्वारा साथ दिए जाने पर वे अपने जीवन के अनेक पलों को याद करते हैं और शकुन के साथ बाँटते हैं। शकुन के साथ डॉ. देव को काफी चैन मिलता है। आंतरिक भावबोध से शून्य हृदय के बंजर धरातल पर रोमानी भावबोध रूपी वर्षा की हल्की ललक भी उसके अंदर एक हलचल पैदा कर देती है। डॉ. देव एवं शकुन की स्थिति भी बिल्कुल यही है। जंगल की सैर बस से करते समय जब डॉ. देव, शकुन के हाथों को पकड़ते हैं तो उसे ऐसा लगता है मानों खून की एक लहर उसके देह को सरसराते हुए ऊपर उठ गई हो और इसके पश्चात उसे पता भी नहीं चलता कि डॉ. देव का हाथ घंटों उसके हाथों में पड़ा रहा। वह कहती भी है– 'जब मैं उस शाम के बारे में सोचती हूँ, वह क्षण हमेशा लौट आता है– नीरव, उत्सुक, चमकदार– जैसे पिछले दो दिनों से वो मुझसे कुछ कहना चाह रहे थे– और जो मैं उनसे छिपाती आ रही थी– वह दोनों किसी जादूगरनी के पत्ते सा हमारे सामने खुल गया था...।' लेकिन डॉ. देव का संपूर्ण जीवन आंतरिक सूखा से इस प्रकार ग्रसित है कि इस निर्मल जलधारा को चाह कर भी स्पर्श नहीं कर पाते– 'आप क्या सोचती हैं... सूखा क्या सिर्फ बाहर पड़ता है?' और कुछ दिनों बाद इसी सूखे में उनकी मृत्यु होती है।

हम देख सकते हैं निर्मल वर्मा की कहानियों के कथानक संपूर्ण संवेदना को उद्घाटित करने में पूर्णतः सक्षम है। यहाँ युगीन संक्रमण के दौर में एक ओर 'टेरर' है तो दूसरी ओर अकेलेपन की ठंडी 'खामोशी'। गलीज जिंदगी जीने की विवशता व्यक्ति के आंतरिक भाव–बोध का शून्य बना देती है जिससे उसका संपूर्ण जीवन एक सूखे में लटका रह जाता है। लेकिन निर्मल की कहानियों में व्यक्त ये विवशता, चीख और टेरर कुछ आलोचकों के लिए प्रश्नचिह्न की तरह है। विजयमोहन सिंह लिखते हैं– 'आखिर यह किस चीज का आतंक तथा अभिशाप है जो सामान्य चलते–फिरते, हँसते–बोलते, जिंदा इन्सानों को लेखक की 'दिल की दुकान में' ले जाकर 'मुरदा' चीथड़ों' और 'हड्डियों' में बदल देता है?' 9 कायदे से यहाँ ध्यान दिना जाना चाहिए कि विजयमोहन सिंह के शब्द निर्मल वर्मा पर नहीं बल्कि उन परिस्थितियों की तरफ उँगली उठाते हैं जो लेखक का वैसा वर्णन करने को प्रेरित अथवा विवश करते हैं– और अंततः विजयमोहन जी इसका उत्तर पाते हैं 'यूरोप की युद्धोत्तर मनः स्थिति में– 'दरअसल, निर्मल वर्मा यूरोप की युद्धोत्तर मनः स्थिति या संवेदना के कथाकार हैं। इसलिए उनकी सबसे बड़ी चिंता इन 'दो संस्कृतियों की बीच' की स्थिति को समझने की और उसमें अपने को 'स्थित' करने की है। यही कारण है कि वे लगातार यूरोप की युद्धोत्तर संवेदना को विश्व की सामान्य संवेदना के रूप में व्याख्यायित करने की कोशिश करते रहे है।' 10

कहानी के पात्र कहानी की सांकेतिकता तथा अदृश्य यथार्थ को स्पस्ट ही नहीं करते बल्कि इसकी संवेदना को और भी अधिक तीव्रतम रुप में प्रस्तुत भी करते हैं। 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'सूखा', 'परिंदे', 'कव्वे' और काला पानी' और 'धूप का टुकड़ा' जैसी कहानियों के पात्रों को देख कर ऐसा लगता है कि वे एक खामोशी को अपने अंदर धारण किए हुए किसी विशेष चिंतन में डूबे हुए अपना जीवन बिता देंगे। डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि– 'व्यथा की गहनता में निर्मल के पात्र प्रायः खामोश रहते हैं। उनकी खामोशी उनके

व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग है। उनका मौन पियानों के अंदर का मौन है जिसकी एक–आध 'की' पर कभी–कभी लेखक की उँगली का हल्का–सा दबाव पड़ता है।'11

निर्मल वर्मा की कहानी जिन तत्वों के कारण पाठकों को मोह लेती है, उनमें से एक मुख्य तत्व उनकी कहानियों के छोटे–छोटे ब्यौरे हैं। ये छोटे–छोटे ब्यौरे ही हैं, जिनसे वे लगातार एक काव्यात्मक जाल बुनते जाते हैं और पाठक उन ब्यौरों की चमक, सजीवता और प्रभाव में फँसता चला जाता है। इस काव्यात्मक ब्यौरे का एक सुंदर उदाहरण हम 'परिंदे' कहानी में देख सकते हैं– 'मुझे लगा, पियानो का हर नोट चिरंतन खामोशी की अँधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुंध का काटता, तराशता हुआ एक भूला–सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ हर 'पोज' एक छोटी–सी मौत है, मानो घने छायादार वृक्षों की काँपती छायाओं में कोई पगडंडी गुम हो गई हो...'

निर्मल की कहानियों में छोटे–छोटे ब्यौरों की भी बड़ी महत्ता है। हिंदी में और किसी कहानीकार ने कहानी में छोटी–छोटी चीजों के ब्यौरों को इतना महत्व नहीं दिया है जितना निर्मल के यहाँ दिखता है। कारण यह है कि उनके लिए न ब्यौरे कहानी कला की कोई तकनीक नहीं बल्कि स्वयं कला का मर्म है– 'दुनिया को समझने' वाली कला का मर्म– जिसकी चर्चा हम शुरुआत में ही कर आए हैं। इस सिलसिले में डॉ. वीरभारत तलवार का कहना है– 'ये ब्यौरे किसी बड़े अनुभव–सत्य तक पहुँचने की कड़ियाँ–माध्यम–मात्र नहीं हैं, बल्कि अपने आपमें भी संपूर्ण हैं। कहा जा सकता है कि निर्मल की कहानी में ब्यौरे नहीं होते बल्कि ब्यौरों में कहानी होती है।'12

व्यापक कलात्मक प्रयोग द्वारा निर्मल वर्मा ने यह प्रमाणित कद दिया है कि जो सबका अतिक्रमण करने की क्षमता रखता है, वही सबको सजीव चित्रों में रहने की सिद्धि भी प्राप्त करता है। वर्णनात्मक शैली का अभुतपूर्व प्रयोग कथा को बिल्कुल सजीव बना देता है। भाषा में नवजात शिशु सी सहजता और ताजगी है, वस्तुओं के चित्रों में पहले–पहले देखे जाने का अपरिचित टटकापन है। ठेठ वाचक शब्द, स्वतंत्र वाक्य, अलग–अलग देखने पर हर शब्द मामूली है, हर वाक्य साधारण है, लेकिन उनका पूरा प्रभाव जबर्दस्त है। बिंब निर्धारण और उपमा चुनाव से उनकी सूक्ष्म निरीक्षण वृत्ति और प्रखर कल्पना शक्ति का पता चलता है। यथा– 'डॉक्टर का सिगार अँधेरे में लाल बिंदी सी चमक रहा था।' –(परिंदे) जब 'परिंदे' संग्रह पहली बार छपा था, तो कहा गया था कि इन कहानियों की जीवन स्थितियाँ 'इतिहास की विराट नियति बन कर खड़ी हो जाती हैं' 13 और उन स्थितियों के सामने खड़े पात्रों की जुबान से निकला मामूली–सा वाक्य 'एक युगव्यापी प्रश्न बन जाता है।'14

अपनी कहानियों के माध्यम से निर्मल वर्मा व्यक्ति के अंदर लुप्त होते जीवन मूल्य का ही नहीं दिखाते, बल्कि व्यक्ति के जीवन को सूखा बना देने वाले जिम्मेदार तत्वों को भी उद्घाटित करते हैं। नामवर जी ने कहा है कि– 'निर्मल की पैनी दृष्टि भली–भाँति देखती है कि एक प्रश्न है जिसका सामना आज का युवक भी कर रहा है और युवती भी। इसकी काली छाया एक ओर बेरोजगारी की शक्ल में दिखाई पड़ती है तो दूसरी ओर प्रेम के निजी क्षेत्र को भी ग्रस रही है। जीवन का यही व्यापक परिवेश–बोध है जिसके कारण निर्मल की प्रेम कहानियाँ नितांत प्रेम–कहानी न होकर जीवन की अन्य समस्याओं से जुड़ जाती है।'15

संदर्भ –

1. फिशर, अंर्स्ट, कला की जरुरत, अनुवाद–रमेश उपाध्याय, राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ.17

2. मिश्र, रामदरश, हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, वाणी प्रकाशन, 2007, पृ.150

3. सिंह, विजयमोहन, आज की कहानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002, पृ.65

4. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ. 56

5. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ. 52

6. तलवार, वीरभारत, सामना, वाणी प्रकाशन, 2005, पृ. 164

7. तलवार, वीरभारत, सामना, वाणी प्रकाशन, 2005, पृ. 174

8. श्रीवास्तव, परमानंद, आज की कहानी (लेख), नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति, संपादक– देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 130

9. सिंह, विजयमोहन, आज की कहानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002, पृ.59

10. सिंह, विजयमोहन, आज की कहानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002, पृ.60

11. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ.60

12. तलवार, वीरभारत, सामना, वाणी प्रकाशन, 2005 पृ. 148

13. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ.52

14. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ.52

15. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ.62

आलेख

भूमंडलीकरण के संदर्भ में भारत और हिंदी

सुरजीत सिंह वरवाल
डॉ. हरी सिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय
सागर, (म० प्र०)
मो०–09424763585

इंद्र मित्रं करुणमग्नि माहुरथो दिव्यःस सुपुर्णो गुरुत्मान,
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यमःमातरिश्वानमाह। 1
ऋग्वेद (1–46–167)

आज ग्लोबलइजेशन का दौर भी मनुष्य के हित की दृष्टि को रेखांकित करता है। जब कोई नया विचार, समाज में आता है तो उसके दो परिणाम सर्वप्रमुख उभर कर आते है एक पोजिटिव (सकरात्मक), दूसरा नेगिटिव (नकारात्मक)। भूमंडलीकरण ने जहाँ विभिन्न विचारों को, तर्कों को, संस्कृतियों को, एक दूसरे से जोड़ा वहीं दूसरी ओर कुछ खामियाजे भी समाज को भुगतने पड़े। भारत एक प्राचीन सभ्यता, ऋषि–मुनियों का देश रहा है। लोक विश्वास, रीति रिवाज लोकतान्त्रिक संस्थाओं पर आधारित 21 सदी में एक महान शक्ति बनकर सामने आ रहा है। भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में, विश्व का सबसे तेजी से प्रगति करने वाला, मुक्त बाजार वाला लोकतान्त्रिक देश है।

संप्रति, राजनीति, अर्थनीति समाज व संस्कृति को गहरे रुप में प्रभावित करने वाली भूमंडलीकरण की प्रक्रिया कब आरम्भ हुई, विद्वानों में कोई मतैक्य नहीं है। विद्वानों का एक बड़ा वर्ग यह मानता है कि अतीत में हम पूंजी और श्रम को आवागमन करुप में भूमंडलीकरण की शुरुआत देख सकते हैं, वहीं दूसरा वर्ग यह मानता है कि अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया को भूमंडलीकरण की संज्ञा देना इसलिए उचित नहीं होगा, क्योंकि यह समूची प्रक्रिया वैश्विक नहीं थी, बल्कि यह कुछ सीमित राष्ट्रों के मध्य स्थापित संबंध था। उनकी एक दलील यह भी है कि इसमें एशिया व अफ्रीका के ज्यादातर बाजार या 'अबाध वाणिज्य' के युग की तरह परिभाषित किया जाना सुविधाजनक प्रतीत होता है, क्योंकि इस दौरान पूंजी और श्रम के आवागमन पर कोई विशेष रोक नहीं देखी जा सकती हैं इसी प्रकार व्यापार के विस्तार के माध्यम से विश्व अर्थव्यवस्था के एकीकरण की प्रक्रिया देखी जा सकती है। इस प्रक्रिया को यातायात व संचार जैसे रेलवे, तार व वाष्प इंजन के प्रयोगों से सहायता मिली।2

हस्ट्र एवं थांपसन जैसे अर्थशास्त्रियों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि आज की तुलना में वर्ष 1913 के आस–पास भूमंडलीकरण की प्रवृतियां कहीं ज्यादा दृष्टिगोचर होती है। इस संबंध में दोनों विद्वानों ने बड़े रोचक ढंग से ऑकड़े भी प्रस्तुत किए हैं। वे दलील देते हैं कि महत्वपूर्ण आर्थिक शक्तियों के राष्ट्रीय जीडीपी के पूंजी–निर्गम का प्रतिशत भी 1905–14, 1965–75 और 1982–86 में क्रमशः 6.61, 1.17 व 1.10 प्रतिशत देखा जा सकता है।'' 3 इस धारण को पाल क्रुगमैन और रॉबर्ट गिलीपिन ने भी स्वीकार किया है और इसके पक्ष में दमदार ऑकड़े भी प्रस्तुत किए हैं। यही नहीं, विद्वानों का एक बड़ा वर्ग प्रथम विश्व–युद्ध के काल को अन्तराष्ट्रीय एकीकरण के युग का स्वर्ण काल कहने से भी नहीं चुकता। प्रथम विश्व–युद्ध से भूमंडलीकरण के इस सिलसिले से खासा परिवर्तन दिखाई देता है। भूमंडलीकरण के स्थान पर राष्ट्रों की सरहदों ने पूंजी और श्रम के बेरोकटोक आवागमन को मुश्किल बना दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को चुना जिसके अंतर्गत सरकार ने विकास का मार्ग अपनाया। इसके कई बड़े उद्योग स्थापित किए और धीरे–धीरे निजी क्षेत्र को विकसित होने दिया। बर्षों तक भारत अपने निर्धारित लक्ष्य पाने में सक्षम नहीं हो सका। कल्याणकारी कार्यों के लिए भारत ने अन्य देशों से ऋण लेने की विश्वसनीयता खो बैठा। कई अन्य समस्याओं जैसी बढ़ती कीमतें, पर्याप्त पूंजी की कमी, धीमी विकास और प्रौद्योगिकी के पिछड़ेपन ने संकट को बढ़ा दिया। सरकारी खर्च आय से कहीं अधिक हो गया। इसने भारत को भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को तेज करने तथा दो अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सुझाव के अनुसार अपने बाजार खोलने को विवश किया। सरकार द्वारा अपनाई गई रणनीति को नई आर्थिक नीति कहा जाता है। इस नीति के अंतर्गत कई गतिविधियों को, जो सरकारी क्षेत्र द्वारा ही की जाती थी, निजी क्षेत्र के लिए भी खोल दिया गया। निजी क्षेत्र को कई प्रतिबंध से भी मुक्त कर दिया गया। उन्हें उद्योग प्रारम्भ करने तथा व्यापारिक गतिविधियां चलाने के लिए कई प्रकार की रियायते भी दी गई। देश के बाहर से उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को उत्पादन करने तथा अपना माल और सेवाएँ भारत में बेचने के लिए आमंत्रित किया गया। कई विदेशी वस्तुओं को, जिन्हें पहले भारत में बेचनें की अनुमति नहीं थी, अब अनुमति दी जा रही है।

भारत में भूमंडलीकरण के अंतर्गत विगत एक दशक में कई विदेशी कंपनियों द्वारा मोटरगाड़ियों, सूचना प्रौद्योगिक, इलेक्ट्रोनिक्स, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के क्षेत्र में उत्पादन इकाईयाँ लगाई गई हैं। इससे भी बढ़कर कई उपभोक्ता वस्तुओं विशेषतः इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग में जैसे रेडियों, टेलीविजन, और अन्य घरेलू उपकरणों की कीमतें घटी हैं। दूरसंचार क्षेत्र ने असाधारण प्रगति की है। अतीत में

जहाँ हम टेलीविजन पर एक या दो चैनल देख पाते थे उसके स्थान पर अब हम अनेक चैनल देख सकते हैं। हमारे यहाँ सेल्यूलर फोन प्रयोग करने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ हो गई है, कम्प्यूटर और अन्य आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग खूब बढ़ा है। जब विकासशील देशों को व्यापार के लिए विकसित देशों से सौदेबाजी करनी होती है तो भारत एक नेता के रुप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक क्षेत्र जिसमें भूमंडलीकरण भारत के लिए उपयोगी नहीं है वह है– रोजगार पैदा करना। यद्धपि इसने कुछ अत्यधिक कुशल कारीगरों को अधिक कमाई के अवसर प्रदान किए परन्तु भूमंडलीकरण का लाभ मिलना शेष है। भारत के अनेक भू–भागों को विश्व के अन्य भागों में उपलब्ध भिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी का कुशलता से प्रयोग कर सिंचाई व्यवस्था को सुद्रढ़ बनाने की आवश्यकता है। विकसित देशों में खेती के लिए अपनाए जाने वाली तरिकों को अपनाने के लिए भारतीय कृषकों को शिक्षित करना है। यहाँ अस्पतालों को अधिक आधुनिक उपकरणों की आवश्यकता है। भूमंडलीकरण द्वारा अभी भारत के लाखों घरों में सस्ती दर पर बिजली उपलब्ध करवानी है।

''भूमंडलीकरण की बात शुरु की जाए तो सबसे पहले हम भाषा का ही सवाल ले– अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंध । जब मैकाले ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत की थी, तब भूमंडलीकरण का सवाल नहीं था। अंग्रेजी सत्ता हमें विश्व नागरिक बनाने के लिए अंग्रेजी नहीं पढ़ा रही थी। उपनिवेशवादी दौर में उन्हें अपने लिए अंग्रेजी पढ़े– लिखे कार्टून चाहिए थे। इंगलिशासन के विधि–विधान और कानून के देश में लागू करने के लिए न्यायाधीश और वकील चाहिए थे। भारत में वकीलों का तमगा ही पहला अंग्रेजी पढ़ा–लिखा तमगा था। तब की अंग्रेजी शिक्षा और आज की अंग्रेजी शिक्षा में अंतर है। आज भारत की अंग्रेजी हमें अपने ही देश में व्यक्तिहीन बनाती है और साथ ही हमें विश्वबाजार में विश्व–नागरिक बनाती है। भूमंडलीकरण की स्पर्धा में यह हमारी सहायक भी है। लेकिन भूमंडलीकरण से अलग जब राष्ट्रीयकरण का सवाल आता है तो अंग्रेजी के कारण हमारा सम्पर्क और संबंध अपने ही देश के दलित, शोषित और अशिक्षित वर्ग से टूट जाता है, इतना हीं नहीं सभी भारतीय भाषाओं में हमारी सोच का प्राकृतिक प्रवाह बाधित होता है। भूमंडलीकरण लगातार हमारी संस्कृति को विकृत करता जा रहा है। हमारे सदियों पुराने मानवीय सरोकारों और संस्कारों को तोड़ता जा रहा है। भूमंडलीकरण के साथ आई है स्पर्धा, मुनाफे की संस्कृति और मानवाधिकारों को मसलना।

भारत में भूमंडलीकरण का जो भूचाल आया है, वह कल्याणकारी पूंजीवादी तो नहीं है। पर ये मुमकिन है कि विकसित पूंजीवादी देशों में वह कोई कल्याणकारी शक्ल रखता हो, पर विकासशील देशों में वह शोषक की शक्ल में ही आया है। वह कल्याणकारी नहीं विनाशकारी है भूमंडलीकरण की छतरी के नीचे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का जो हमला आज हो रहा है, वह केवल हमारी अर्थव्यवस्था पर नहीं है। इसे समझना जरुरी है यह हमला प्रगतिगामी जीवंत भारतीय संस्कृति, परम्परा, जीवन–शैली पर ही नहीं, बल्कि वैचारिक संघर्ष से जैसे–तैसे विकसित होते हुए लोकतान्त्रिक मूल्यों पर भी है। भारत ने जो लोकतान्त्रिक संविधान बनाया है, उसके अंतर्गत बनने वाली सरकारों का स्वरुप ट्रस्टी का है। वे सरकारें जनता की परिवर्तनकामी, न्यायपूर्ण समाज रचना के मिशन को लेकर सत्ता संभालती है।

बाजारवाद एक जीवन दर्शन है– निर्लज्ज उपभोक्तावाद इसके लिए वह आज के तीव्रगामी सूचनातंत्र का सहारा लेता है। वह दस सेकण्ड में यह बताता है कि कोई वाशिंग मशीन आपके लिए कितनी उपयोगी है और यहीं अनकहे तरीके से वह हमारी समाज–रचना के उस धागे को तोड़ देता है जो हमारे समाज में हमें परस्पर पूरक बनाता है। अपने एक समकालीन अग्रज समाजशास्त्री सिद्धराज जी ढड्ढा के हवाले से कहूँ तो वाशिंग मशीन के बारे में सोचते ही हमारा रिश्ता घर के धोबी से टूटने लगता है इसी तरह उपभोक्तावादी संस्कृति में नई चीजों की भूख पैदा की जाती है, फिर चाहे वे चीजें जीवन के लिए जरुरी हो या न हो। व्यापार का पुराना नियम था– मांग के अनुसार पूर्त्ति, वैश्विक बाजारवाद ने यह नियम एकदम सही दिया है। अब पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अपना उत्पादन इस नजरिए से करती है कि किस चीज को बनाकर अधिकतम मुनाफा बटोरे जा सके। फिर वह उद्योगपति अपने प्रोडक्ट की मांग पैदा करता है। जरुरत न हो तो भी मध्यवर्ग उस प्रोडक्ट को खरीदने लगता है फिर उसे लगने लगता है कि वह प्रोडक्ट उसके कुलीन व्यक्तित्व का जरुरी हिस्सा बन गया है।

समाजशास्त्री सिद्धराज ढड्ढा के शब्दों में 'ऐसे में हमे उपभोक्ता उत्पादनों का ग्लोबलाइजेशन नहीं, बल्कि स्वदेशी उत्पादनों का (लोकलाइजेशन) स्थानीकरण चाहिए। 4 हाँ ग्लोबलाइजेशन का हम स्वागत करते हैं, यदि हमारा विचार, सूचना विज्ञान के क्षेत्र में हो, क्षमा, करुणा, दया, अहिंसा, संवेदना, मैत्री और शांति के पक्ष में हो। वह कोम्पीटीटिव न होकर पूरक (कोम्प्लीमैट्रि) हो। लेकिन हो उल्टा रहा है। स्वर्ग का सपना देखते–देखते हम नरक में पहुँच गए हैं। भारत दुनियाभर के उत्पादन निर्माताओं के लिए एक बड़ा खरीददार और उपभोक्ता बाजार है। बेशक, हमारे पास भी काफी उत्पादन हैं और हम भी उन्हें बदले में दुनियाभर के बाजार में उतार रहे हैं क्योंकि बाजार केवल खरीदने की ही नहीं, बेचने की भी जगह होती है। इस क्रय–विक्रय की अंतर्राष्ट्रीय मेले में संचार माध्यमों का केन्द्रीय महत्व है क्योंकि वे किसी भी उत्पादन को खरीदने के लिए उपभोक्ता के मन में ललक पैदा करते हैं। यह उत्पाद वस्तु से लेकर विचार तक कुछ भी हो सकता है। यही कारण है कि आज भूमंडलीकरण की भाषा का प्रसार हो रहा है तथा मात्र बोलियाँ सिकुड़ और मर रही है।

आज के भाषा संकट को इस रुप में देखा जा रहा है कि भारतीय भाषाओं के समक्ष उच्चरित रुप भर बनकर रह जाने का

खतरा उपस्थित है क्योंकि सम्प्रेषण का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरआधुनिकता माध्यम टी.वी अपने विज्ञापनों से लेकर करोड़पति बनाने वाले अतिशय लोकप्रिय कार्यक्रमों तक में हिंदी बोलता भर है, लिखता अंग्रेजी में ही है। इसके बावजूद यह सह है कि इसी माध्यम के सहारे हिंदी अखिल भारतीय ही नहीं बल्कि वैश्विक विस्तार के नए आयाम छू रही है। विज्ञापनों की भाषा और प्रोमोशन विडियो की भाषा के रुप में सामने आने वाली हिंदी शुद्धतावादियों को भले ही न पच रही हो, युवा वर्ग ने उसे देश भर में अपने सक्रिय भाषा कोष में शामिल कर लिया है। इसे हिंदी के संदर्भ में संचार माध्यम की बड़ी देन कहा जा सकता है।

समाज के लिए दर्पण के रुप में साहित्य भी तो संचार माध्यम ही है, जो सूचनाओं का व्यापक सम्प्रेषण करता है। साहित्य की तुलना में संचार माध्यमों का ताना–बाना अधिक जटिल और व्यापक है क्योंकि वे तुरंत और दूरगामी असर करते हैं। भूमंडलीकरण ने उन्हें अनेक चैनल ही उपलब्ध नहीं करवाए हैं, बल्कि इंटरनेट और वेबसाईट के रुप में अंतर्राष्ट्रीयता के नए अस्त्र–शस्त्र भी मुहैया करवाए हैं। हिंदी भाषा के सामर्थ्य में वृद्धि हुई है। संचार माध्यम यदि आज के आदमी को पूरी दुनिया से जोड़ते हैं तो वे ऐसा भाषा के माध्यम से ही करते हैं। अत: संचार माध्यम की भाषा के रुप में प्रयुक्त होने पर हिंदी समस्त ज्ञान–विज्ञान और आधुनिक विषयों से सहज ही जुड़ गई है। साहित्य लेखन की भाषा आज भी संस्कृतिनिष्ठ बनी हुई है तो दूसरी तरफ संचार माध्यम की भाषा ने जन भाषा का रुप धारण करके व्यापक जन स्वीकृति प्राप्त की है। समाचार विश्लेषण तक में कोडमिश्रित हिंदी का प्रयोग इसका प्रमुख उदाहरण है।

हिंदी के इस रुप विस्तार के मूल में यह तथ्य निहित है कि गतिशीलता हिंदी का बुनियादी चरित्र है और हिंदी अपनी लचीली प्रकृति के कारण स्वयं को सामाजिक आवश्यकताओं के लिए आसानी से बदल लेती है। इसी कारण हिंदी के अनेक ऐसे क्षेत्रीय रुप विकसित हो गए हैं जिन पर उन क्षेत्रों की भाषा का प्रभाव साफ–साफ दिखाई देता है। ऐसे अवसरों पर हिंदी व्याकरण और संरचना के प्रति अतिरिक्त सचेत नहीं रहती बल्कि पूरी सदिच्छा और उदाहरण के साथ इस प्रभाव को आत्मसात कर लेती है। यही प्रवृति हिंदी के निरंतर विकास के आधार हैं और जब तक यह प्रवृति है तब तक हिंदी का विकास रुक नहीं सकता। बाजारीकरण ने आर्थिक उदारीकरण, सूचनाक्रांति तथा जीवनशैली के वैश्विकरण की जो स्थितियाँ भारत की जनता के सामने रखी, इसमें संदेह नहीं कि उनमें पड़कर हिंदी भाषा के अभिव्यक्ति कोशल का विकास ही हुआ। अभिव्यक्ति कौशल के विकास का अर्थ भाषा का विकास है। बाजारीकरण के साथ विकसित होती हुई हिंदी की अभिव्यक्ति क्षमता भारतीयता के साथ जुड़ी हुई है। यदि इसका माध्यम अंग्रेजी होता तो अंग्रेजियत का प्रचार होता । लेकिन आज प्रचार माध्यमों की भाषा हिंदी होने के कारण वे भारतीय परिवार और सामाजिक संरचना की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसका अभिप्राय है कि हिंदी का यह नया रुप बाजार सापेक्ष होते हुए भी संस्कृति निरपेक्ष नहीं हैं। विज्ञापनों से लेकर धारावाहिकों तक के विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि संचार माध्यमों की हिंदी, अंग्रेजी और अंग्रेजियत की छाया से मुक्त है और अपनी जड़ों से जुड़ी हुई है। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. ऋग्वेद –(1–46–164)
2. भूमंडलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प, अमित कुमार सिंह, सामियक प्रकाशन– नई दिल्ली, पृ.सं– 7–8.
3. भूमंडलीकरण : साहित्य और संस्कृति – श्री कमलेश्वर, 24–सितम्बर–2001,
लेख 'भूमंडलीकरण, साहित्य और संस्कृति'
4. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ : संचार माध्यम और हिंदी का सन्दर्भ, डॉ० ऋषभदेव शर्मा, विक्की बुक्स ट्रस्ट, दिल्ली.

लोकवाणी
सम्माननीय सम्पादक जी,
सादर नमस्कार,

आशा है आप सपरिवार सकुशल रहकर 'सुसंभाव्य' पत्रिका का अच्छी तरह से सम्पादन कर रहे हैं। 'सुसंभाव्य' पत्रिका के अब तक हमें दो अंक मिले हैं तथा 20 नवम्बर को सचलभाष से बात भी हुई। आप पत्रिका 'सुसंभाव्य' का कुशल सम्पादन, प्रबंधन एवं लेखों का चयन कर रहें हैं। यह आपकी महानता एवं उदारता है कि आप हमें पत्रिका सतत् भेज रहे हैं। हालाँकि पत्रिका निकालना काफी दुस्तर कार्य है। आप सतत् साहित्यिकता का ध्यान रखते हुए सहृदय उपयोगी पत्रिका निकालते रहेंगे, ऐसी शुभेच्छा एवं मंगलकामना के साथ–

शंकर प्रसाद शुक्ल
विद्यानगर, आणंद–388120
मो०–09409214619

समीक्षा

नागार्जुन की काव्यचेतना

डॉ. सजित खांडेकर
सहायक प्राध्यापक
रा. जि. महाविद्यालय
भोसरी, पुणे
मो०–09673918061

'बाबा' के नाम से लोकप्रिय हिंदी और मैथिली के प्रख्यात कवि और कथाकार 'नागार्जुन' का पुरा नाम श्री वैद्यनाथ यात्री है। जून 1911 ई० में जेष्ठ मास की पूर्णिमा को नागार्जुन का जन्म बिहार राज्य के दरभंगा जिले के 'तमौनी' गाँव में हुआ। साहित्य की ओर उनकी रुचि बचपन से ही रही। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'राम के प्रति' कविता थी जो सन् 1935 में 'विश्वबंधु' साप्ताहिक में छपी। इसी समय से वे निरंतर कविता करते रहे।

नागार्जुन हिंदी के ऐसे कवि है जिन्हौंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि जीया भी है। उनकी प्रखर सामाजिक चेतना यथार्थ से सीधा साक्षात्कार करती है और जनजीवन से सीधे जागर जुड़ती है। उन्होंने देखा है कि निम्नवर्ग श्रमरत रहते हुए भी भरपेट भोजन नहीं जुटा पाता है। जीवन की अभावग्रस्तता तथा कठिनाईयों से जूझते मानव को नागार्जुन ने चित्रित किया है। दूसरी ओर धनिक वर्ग है जो ऐश आराम में लिप्त है। उच्च वर्ग के प्रति गहरी कटुता के भाव नागार्जुन में है जो आक्रोश का रूप लेते है। नागार्जुन अपने देश, अपनी धरती और अपनी जनता के कवि है। अपने देश के लोगों के हर्ष–विषाद को उनकी आशाओं आकांक्षाओं को उनके संघर्षों को उन्होंने अपनी कविताओं में गूँथा है। निम्न मध्य वर्ग में जन्में नागार्जुन ने कई समस्याओं को तथा अभावों को प्रत्यक्ष झेला है। साथ ही कठिन समस्याओं से जूझते मनुष्यों को करीब से देखा है। अत: उन्होंने अपनी कविताओं में अकाल, भूचाल, बिमारी, महँगाई आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

''कहीं बाढ़ भूचाल कहीं पर
कहीं अकाल, कहीं बीमारी''

इस प्रकार का वास्तववादी चित्रण नागार्जुन ने अपनी काव्यकृतियाँ–'युगधारा', 'प्यासी पथराई आँखें', 'पखोवाली', 'खून और शोले', 'प्रेत का बयान', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', 'हजार–हजार बाहोंवाली', 'तालाब की मछलियाँ' आदि में किया है। नागार्जुन का कवि व्यक्तित्व किसी एक कटी–छटि कोटि में नहीं रखा जा सकता। बिजय बहादुर सिंह के शब्दों में– ''वे एक साथ क्लासिक भी है और रोमांटिक भी। राष्ट्रीय भी हैं और प्रगतिशील भी। ब्राह्मण भी हैं और बौद्ध भी जितने शहरी उतने गँवई भी हैं।

नागार्जुन ने वर्ग वैषम्य, अंतर्विरोधों और व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। आजादी के बाद सामाजिक स्थितियों में कितनी तेजी के साथ बदलाव आया। आजादी मिलने के बाद भी आभावों से ग्रस्त देश की स्थितियों को देखकर नागार्जुन बेचैन है और दाने–दाने के लिए तरसते पीड़ित वर्ग के खाली पेट की आवाज बुलंद करते है, इसका चित्रण उन्होंने 'युगधारा' में किया है–

'खाली है हाथ खाली है पेट
खाली है थाली खाली है प्लेट'

कवि को महसूस हुआ की स्वतंत्रता मिलने के बाद भी देश की प्रगति रुक जाने का मूल कारण प्रतिगामी और सुविधाप्राप्त वर्ग है, जो रूढिवादी और जनविरोधी है। देश के मजदूरों और किसानों कि स्थिति का वास्तविक चित्रण कवि ने 'प्रेत का बयान' में इस प्रकार किया है–

''बीज नहीं है, बैल नहीं है, बरखा बिन अकुलाते है
नहीं खेत से कनका भी दाना उपजा पाते है
पिछला कर्ज चुका न सके, साहू की झिड़की खाते है''

कवि ने मजदूर जमींदार और सेठ साहुकार के रहन–सहन का बड़े निकट से अनुभव किया है। सेठ और जमींदारों के पास धन का संग्रह अब नहीं होने दिया जाएगा। सारी जमीन सरकार की होगी और वह मजदूरों, किसानों में बाँटी जायेगी ऐसी धारणा कवि ने 'लाल भवानी' कविता में व्यक्त की है।

'सेठ और जमींदारों को नहीं मिलेगी एक छदाम
खेत खान दुकान मिले सरकार करेगी दखल तमाम
खेत मजदूरों और किसानों में जमीन बँट जाएगी
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडराएगी।''

इन पंक्तियों में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से, किसानों के सुखी भविष्य के प्रति आशा प्रकट की गई है।

'कवि ने सतरंगे पंखोवाली' काव्यसंग्रह की 'गोले पाँक की दुनिया गई है छोड़' कविता में गंगा की बाढ़ का वर्णन करने के बाद शेष रह जानेवाले कीचड़ पर मल्लाहों के छोकरों को चलता देख इच्छा इस प्रकार प्रकट करता है।

'मन यही करता है कि मैं भी
उन्हीं में से एक होता
और
नंगे पैर, नंगा सिर
समुचा बदन नंगा
विचरता पंकिल पुलिन पर।''

कवि अपने को इसी निम्न वर्ग में से एक मानता है। इसका कारण उन्होंने 'युगधारा' में एक जगह कहा है–

'क्योंकि हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालूम
कि हम पर सीधे पड़ी है गरीबी का मार
सुविधा प्राप्त लोगों से सदा ही समझा भू–भार।''

कवि ने धार्मिक रूढ़ियों या अंध विश्वासों पर भी व्यंग्य कसा हुआ है। 'प्यासी पथराई आँखें' काव्यसंग्रह की कविता 'चौराहे के उस नुक्कड़' में अंधश्रद्धालुओं तथा उनकी श्रद्धा का दुरूपयोग करनेवाले पाखंडी साधुओं पर व्यंग्य स्पष्ट है। ये साधु अपने करतब दिखाकर भोली जनता की जेबें खाली करवा लेते हैं–

'काँटों पर नंगा सोया है
ठिठक गया मैं लगा देखने

उस औघड़ बाबा के करतब
और पाँच पैसे दस पैसे
जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे।''

नागार्जुन ने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा राजनीतिक नेताओं की पोल खोल दी है। जिसमें उन्होंने कहीं भ्रष्ट स्वदेशी शासकों, साम्राज्यवादी राज्याध्यक्षों, सर्वोदयी नेताओं आदि पर उनकी अनैतिक और कर्तव्यहीनता को देखकर व्यंग्य किया है। आज नेतागण भाषणों द्वारा अपनी सेवाभावना और कर्तव्यनिष्ठा के प्रदर्शन में खूब लगे हैं, पर उनके इन वक्तव्यों को रचनात्मक रूप मिलता नहीं दिखाई देता। हम कवि के इस विचार से सहमत है कि 'झंडा उँचा रहे हमारा' गीत गाने से झंडा उँचा नहीं होगा। पर यहाँ ऐसा ही किया जा रहा है। झंडे का उँचा होना तभी माना जा सकता है जब साधारण से साधारण व्यक्ति का जीवन भी उँचा उठ रहा है। कवि ने 'खून और शोले' काव्यसंग्रह में इस प्रकार का चित्रण किया है–

'दस हजार दस लाख मरें, पर झंडा उँचा रहे तुम्हारा
कुछ हो काँग्रेसी शासन का डंडा उँचा रहे तुम्हारा।''

कवि कहते है कि, आजाद भारत के प्रधानमंत्री नेहरू पर पूँजीवादी देशों का प्रभाव बढ़ता गया है। नेहरु सरकार ने लोगों के निजी हितों के समक्ष राष्ट्रीयहितों को ठुकरा दिया और समाजवाद गाँधी के नाम को वोटों के लिए इस्तेमाल करते रहें इसका चित्रण नागार्जुन ने 'तालाब की मछलियाँ' में बड़े अच्छे ढंग से किया है–

'संभलो, संभलो पंडित नेहरु, दानव दल से नाता तोड़ो
आँख मिचौली बहुत हुई, बस महाकाल का सत्यानाशी दामन छोड़ो
वतन समुचा रेहन रखकर क्या पाओगे?
किस मुँह से फिर गांधीजी के गुण गाओंगे?'

कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना का भी सच्चा चित्रण प्रस्तुत किया है। जन सामान्य की दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही हालत से नागार्जुन पूरी तरह से चिंतित है। जिस गाँव की मिट्टी में नागार्जुन पालित पोषित हुए उससे लेकर समूचे देश के कण–कण से उनका गहरा लगाव रहा है। इसका चित्रण उन्होंने 'प्यासी पथराई आँखें' में इस प्रकार किया है–

'खेत हमारे भूमि हमारी सारा देश हमारा है
इसीलिए तो हमको इसका चप्पा–चप्पा प्यारा है'

नागार्जुन जी की राष्ट्रीयता का पूरा–पूरा प्रमाण उनके द्वारा सन् 1962 में चीन आक्रमण 1965 और 1971 के पाकिस्तानी आक्रमणों के दौरान लिखी गई उनकी कविताओं में मिल जाने के बाद अब तक के कम्युनिस्ट नागार्जुन का कम्युनिस्टों से मोहभंग हुआ। एक सच्चे देशभक्त के यहाँ राष्ट्रीयता एवं देशहित प्राथमिक होता है। इसका चित्रण उन्होंने 'तालाब की मछलियां' में किया है–

'आज तो मैं दुश्मन हूँ तुम्हारा
पुत्र हूँ भारतमाता का
और कुछ नहीं हिन्दुस्तानी हूँ महज
प्राणों से भी प्यारे हैं मुझे अपने लोग
प्राणों से भी प्यारी है मुझे अपनी भूमि'

नागार्जुन जी ने कुछ श्रद्धांजली परक तथा विचार दर्शन से युक्त कविताओं की रचना भी की है। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मानव सभ्यता के विकास और नाश का सामान जुटा लिया है। नागार्जुन जी मानव प्रगति में विज्ञान के योग का स्वागत करते हुए 'तालाब की मछलियां' में कहते है–

'जनम–जनम के अभिशापों से
त्रिशंकुओं को मुक्ति मिलेगी
सौ–सौ विश्वामित्र बनेंगे
नई सृष्टि के नये विधाता'

कवि ने देश के साहित्यकारों, महान नेताओं आदि को अपनी कविताओं में श्रद्धांजलि अर्पित की है। 'प्यासी पथराई आँखें' काव्यसंग्रह की 'लुमुम्बा' कविता में 'लुमुम्बा' एक देशभक्त क्रांतिकारी नायक था। गोरे महाप्रभुओं में अमानुष ढंग से उसकी हत्या कर दी। अफ्रीकी जनता की सेवा में रत 'लुमुम्बा' के महान कार्यो का स्मरण करते हुए कवि ने उस गौरी कूटनीति की ओर संकेत किया है, उसकी अमरता और महाबलिदान का गौरव गान किया है–

'तुम मरकर भी अमर रहोगे, लोग ही प्रतिशोध
कालनेमि को भस्म करेगा जन–मन का यह क्रोध
कोटि–कोटि काले कंठों की सुन–सुन कर ललकार
वह देखो, गोरे दनुजों पर भय का चढ़ा बुखार।''

नागाजुर्न ने अपनी कविताओं के जरिए प्रणयभावना का स्वस्थ चित्रण भी प्रस्तुत किया है। नागार्जुन के कवि हृदय में अपनी प्रेयसी के प्रति गहरी रागात्मकता देखी जा सकती है। नागार्जुन सामाजिक के सदैव पक्षपाती रहे हैं। इसलिए उनके प्रणयचित्रण शालीनता और गरिमा से मुक्त है। 'तालाब की मछलियाँ' में उन्होंने एक जगह कहा है–

'पास ही सोई पड़ी श्लथ कुंतला
प्रेयसी की थपथपाई पीठ
जग गई तो दिखाकर तारे बचे दो चार
कहा मैंने पकड़ तब हाथ
दो घड़ी का हमारा इनका रहा है साथ'

इसप्रकार नागार्जुन के काव्य में हमें उस जीवन का दर्शन होता है जिसे मनुष्य जी रहा है, सजा रहा है, सँवार रहा है और जिसके लिए संघर्ष कर रहा है। युग चेतना और मनुष्य के बेहतर जीवन की आकांक्षा उनके काव्य में तरंगित है। वर्तमान युग की जटिलताओं सामाजिक, विषमताओं, राजनीतिक भ्रष्टाचार और सांप्रदायिकता के मोहजाल को छिन्न–भिन्न एक ऐसे समाज के निर्माण में वे प्रयत्नशील दिखाई देते हैं, जो वर्ग–विहीन हो, शोषण हीन हो, जहाँ की परम्पराएँ व्यक्ति के विकास में बाधक नहीं साधक बने, जहाँ के नेता सदाचारी और जनता देशभक्त हों।

संदर्भ ग्रंथ–

1. नागार्जुन रचनावली खंड 1, 2, 5 संपादक शोभाकांत
2. नागार्जुन की कविता – अजय तिवारी
3. नागार्जुन जीवन और साहित्य – डॉ० प्रकाशचंद्र भट्ट
4. नागार्जुन कवि और कथाकार – सत्यनारायण
5. हिंदी का प्रगतिवादी काव्य – डॉ० उमेश मिश्र

समीक्षा

नींद के हिस्से में कुछ रात भी आने दो
काव्य संग्रह

श्री अभिनव अरुण,
बी–12, शीतलकुंज, लेन–10,
निरालानगर, शिवपुरवा, वाराणसी
मो०–9415678748

कविता अपने आकार से छोटी या बड़ी नहीं होती, उसका असर छोटा या बड़ा होता है। इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी काव्य फलक पर बड़ा असर छोड़ती प्रतीत होती है डॉ0 रचना शर्मा। हिन्द युग्म, नई दिल्ली से सद्य प्रकाशित उनके दूसरे काव्य संग्रह 'नींद के हिस्से में कुछ रात भी आने दो' के माध्यम से हिन्दी कविता को एक अनोखी प्रस्तुति मिली है। संग्रह की कविताएँ रोमांचित करती हैं, पाठक को उलझाती नहीं, वरन् स्वाभाविक रूप से उसके अंतर्मन में एक काव्य धारा–सी प्रवाहित करती हैं। डॉ0 रचना शर्मा इस मायने में भी सराहना की हकदार हैं कि उनकी कविताएँ स्त्री विमर्श, जीवन मूल्य, भाषा और संस्कृति के प्रति सजग होते हुए भी दुरूह अथवा अपठनीय नहीं हुई हैं।

वाराणसी और संस्कृत की पृष्ठभूमि से अभिसिंचित डॉ0 रचना शर्मा की कविताओं की भाषा हमारे संवाद की भाषा है और उनका कथ्य शिल्प चमत्कृत है। 'हमारे दरम्याँ कुछ है तो वो हवा ही है/ जो हमें खुशबुओं से सराबोर रखती है 'या फिर' आज हर ईमानदार का चेहरा उदास है/ और बेईमान की बांछें खिली हुई हैं, आप चाहे जिस भी निकष पर परखें, जिस भी भाव से पढ़ें, इस कलेवर की कविताएँ बार–बार अर्थ के नए आयाम उद्घाटित करती हैं। संग्रह की कविताओं में जीवन है, उम्मीदें हैं, प्रात की शुरुआत होने जा रही है/ जिंदगी नया गीत गुनगुना रही है। वृक्ष, चाँद, सूरज, झरने, पर्वत और पंछी जैसे प्रकृति चिह्न संग्रह की कविताओं में एक नयापन, एक ताजगी लिए आते हैं। जब–जब छाँव की तलाश करती हूँ/ धूप और तेज लगती है/ न जाने कब/ महावृक्ष की तलाश पूरी होगी। कवयित्री जब कहती है, चाँद पर कोई गीत लिखे/ या लिखे कोई गजल/ हम तो उसको छू लेने का/ ढूँढ़ते हैं अवसर, तो लगता है सचमुच मीर के शेर सी मासूमियत कितनी सहजता से आ गयी है, इन दो पङ्क्तियों में। ऐसी ही अनेक कविताएँ हैं इस संग्रह में। जब गुलाबी पंखुरी का रंग लुभाता है/ दिल का हर लफ्ज गजल बन जाता है/ सचमुच इस बड़ी बात को कहने के लिए और पङ्क्तियों की आवश्यकता है क्या?वहाँ नयी सुबह हो कैसे/ जहाँ रोशनी के सभी रास्ते बंद हैं। इस सदृश कविताओं को पढ़ते हुए हम विचारों के गहन सागर में डूब जाते हैं। संग्रह की कविताएँ पाठक के हृदय तल में भाव विस्तार को जन्म देती हैं। वो चलता रहा खामोशी से मेरे शव के साथ/ मेरे जाने के बाद किसी ने उसका चेहरा नहीं देखा। क्या ही गहरी बात कहती हैं, जब वो कहती हैं, हर रुदन में शोक नहीं होता/ कुछ छलावे के आँसू भी होते हैं और साथ ही, कोई तुम्हें/ आहत न करे/ इसके लिए जरूरी है कि/ पहले तुम फेंक दो/ अपने हाथ की कुल्हाड़ी।

कवयित्री का अध्ययन और अनुभव उनके सहज निःसृत तलाशें–तराशे गये बिम्ब–प्रतिबिम्ब में स्पष्ट परिलक्षित है, अभी–अभी टूटे हैं/ कुछ रेशमी सपने/ हरे हैं घाव/ रेशमी कालीन पर/ छिले हैं पाँव। वो मानती हैं और हमें यह मनाने को मना लेती हैं कि 'मछलियाँ छुपी रहती हैं/ पानी के अंदर/ वे दूर रहना चाहती हैं मुनष्यों की दुनिया से 'या फिर' वो अकेले जीती हैं बड़े इत्मीनान के साथ/ ये देखकर पड़ोसी बहुत परेशान रहते हैं। संग्रह की शीर्षक कविता अपनी दो पंक्तियों में क्या ही खूबसूरत सलीके और शाइस्तगी से कहती है। नींद के हिस्से में कुछ रात भी आने दो/ सपनों अब मुझे सो जाने दो। डॉ0 रचना शर्मा की कविताओं को पढ़ते हुए आपको ऐसा लगेगा, जैसे मुड़कर उस गली में हम जितनी बार गये/ कुछ ख्वाब छोड़ आये, कुछ ख्वाब साथ लाये और साथ ही आप इस बात पर यकीन करेंगे कि इस जीवन की आपा–धापी, भौतिकता, वैयक्तिक विषय संग्रह में पीछे छूटते सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के भाव और भावभरे रिश्तों को पुनर्जीवित करने में ये कविताएँ सफल हुई हैं। डॉ0 रचना शर्मा लिखते हुए महसूस करती हैं, आप पढ़ते हुए महसूस करेंगे 'अभी–अभी/ सपनों में आ/ मेरे सर पर हाथ फेर चली गयी माँ।' वस्तुतः कवयित्री ने विधा के प्रचलित खाँचों से इतर भाषा, शिल्प आकार और प्रकार की पूर्व निर्धारित/ परिभाषाओं से परे एक साहसिक, प्रशंसनीय एवं पठनीय संग्रह को सामने लाने का कार्य किया है। जो निःसंदेह स्वागत किये जाने और सराहने योग्य है।

संग्रह को पढ़ते हुए हम कविता जीवी हो जाते हैं, कविताओं से प्रेम–सा हो जाता है। हम इन्हें बार–बार कुछ रुककर, कुछ सोचकर, कुछ यादकर पढ़ना चाहते हैं, ठीक किसी प्रचलित दोहे या खूबसूरत शेर की तरह। इस हेतु डॉ0 रचना शर्मा की कविताएँ पर्याप्त स्पेश देती हैं। इसमें सहायक है हिन्द युग्म के इस संग्रह की पैकेजिंग। पुस्तक का आवरण, भीतरी रेखांकन, कागज की गुणवत्ता सभी ने मिलकर सोने पर सुहागे का काम किया है।

समीक्षा

सर्जक की 'डेहरी'

रणजीत यादव, शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो०–9266415074

लोक जीवन की संवेदनशील सर्जना है–मुन्ना साह रचित काव्य संग्रह 'डेहरी'। इसमें एक ओर महुआ, बरगद, गूलर, तालाब, गोरैया, मिट्टी का दीया, मेला, डेहरी और बदरी की बहुरिया है; वहीं दूसरी तरफ शहर, संगमरमर, बड़े–बड़े बंगले और भीख के सिक्के भी हैं। सहज शब्द बोध से प्रकृति, प्रेम और पीड़ा की अभिव्यक्ति है।

संग्रह में कुल इक्यावन कविताएँ हैं, जिनमें ग्रामीण, आदिवासी लोकजीवन के साथ शहरी जीवन के यथार्थ का निरूपण है। प्रारंभ में चिंता व्यक्त की गयी है–'ना मिट्टी बची/ ना मिट्टी–सा हृदय।' लोग आगे की ओर दौड़े जा रहे हैं। लेकिन इस दौड़ में सहजता समाप्त होती जा रही है। बनावटीपन लोगों के स्वभाव में शामिल हो चुका है।

'बदरी की बहुरिया' पढ़ते वक्त प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' स्मृति पटल पर अचानक कौंध उठती है। दोनों स्थितियों में मृत्यु स्त्री की होती है, पुरुष नहीं मरता। यहाँ बदरी की व्यथा को समझा जा सकता है। वह बहुत अशांत है, लेकिन अशान्ति में भी उसके पास सिर्फ एक ही रास्ता है; वह है मौन। महुआ, गूलर और बरगद आज भी किसी गाँव में आसानी से मिल जाते हैं, किन्तु शहर में दूर–दूर तक नहीं दिखाई देता। महुआ महक के साथ ही कोयल की शरणस्थली है, वहीं गूलर आयुर्वेदिक महत्त्व रखता है। मेला मिलन स्थल है। यहाँ सभी वर्ग के युवा–वृद्ध और बच्चे आते हैं। बच्चों के लिए मेला काफी कौतूहल वाला पर्व है। चंपिया मेले में अपने भाई के लिए बाँसुरी खरीदती है और बाबा के लिए छड़ी। अनायास ही ईदगाह के हमीद की याद ताजा हो जाती है।

'मिट्टी का दीया' सिर्फ एक दीया मात्र नहीं, बल्कि प्रेम का प्रतीक है। सभी को पहल करनी पड़ती है इसकी 'लौ' को बचाने के लिए। जीवन प्रेम के बिना सारहीन है। इसीलिए कवि प्रेम को 'प्रखर विश्वास'/'मधुर हास' और 'जीवन की आस' कहा है। 'आदिवासी की आस्था' को भौतिकता की रेस में शामिल धन–दौलत के पुजारी नहीं समझ सकते–'अर्थ के पुजारी/नहीं समझेंगे बाँसुरी की धुन'।

'तालाब' कविता के लिए चर्चित गाँधीवादी एवं पर्यावरणविद् अनुपम मिश्रजी की किताब 'आज भी खरे हैं तालाब' से भावबोध ग्रहण किया गया है। कविता में सागर तालाब के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन है। 'गुरु माँ' में एक शिष्य के द्वारा गुरु माँ के चरणों में प्रणाम निवेदित हुआ है– साथ ही ज्ञानबोध की आकांक्षा–'कभी ना बढ़े मेरा अभिमान/ इसीलिए हे गुरु माँ/पल–पल देना बोध ज्ञान'/ यहाँ 'विद्या ददाति विनयं' की चरितार्थता प्रतीत होती है। 'मुँहासे' आजकल के युवा वर्ग की समस्या पर केन्द्रित कविता है। वहीं 'मृत्यु' में चर्चित कथाकार संपादक राजेन्द्र यादव की मृत्यु पर उनके अंतिम दर्शन पर लिखी गयी कविता है। इसमें मानव के जन्म को सुमन (फूल) की तरह सुंदर माना गया है। लेकिन मृत्यु रूपी मधुकर (भौंरा) की भी स्मृति दिलायी गयी है। 'लड़की' सभ्य समाज के असभ्य पहलुओं की ओर ध्यान देने पर विवश करती है। भ्रूण–हत्या जैसे जघन्य पाप सिर्फ अनपढ़ लोग ही नहीं करते, वरन् पढ़े–लिखे, अच्छे–खासे रुतवा पर कायम लोग भी कर बैठते हैं। यह समाज के लिए अभिशाप है। भविष्य की भावी स्त्री वर्तमान स्त्री से अपने जीवन की याचना करती चित्रित हुई है। 'वाल्मीकि जंगल' आधुनिक यथार्थ चित्र के साथ उपस्थित है। 'खेत का मजदूर' में ग्रामीण जीवन की स्मृतियों के साथ–साथ किसान का मजदूर के रूप में किस तरह रूपांतर हो जाता है, इसका जिक्र है। 'अभिव्यक्ति' में अनंत प्रश्न के बावजूद मौन पर प्रश्न है कि आखिर अनुभूति सबके पास होती है, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति क्यों नहीं। यह कैसी विडम्बना है कि हँसी का आवरण पीड़ा को निगलता हुआ प्रतीत हो रहा है। 'आदिवासी स्त्रियाँ प्रकृति के प्रांगण में रहती हैं। ये प्रकृति से और प्रकृति इनसे सच्चा प्यार करती हैं। नाचते, गाते अपने पर्व सरहुल मनाती हैं। भित्ति चित्र, पत्थरों पर नक्काशी में इनका जवाब नहीं। श्रम करने में भी पुरुषों से होड़ लेती हैं। कभी–कभी शहरों में इन्हें पीठ पर अपने बच्चे को बाँधकर श्रम करते हुए भी देखा जाता है।

'सूर्य कथन' में मानव द्वारा प्रकृति के नुकसान के प्रत्युत्तर में प्रतिशोध की भाव से अभिव्यक्ति है–'नदियों पहाड़ो से/खेला कैसा खेल/अब दंश झेलैं' सच में बढ़ते शहरीकरण और अंधी विकास की प्रवृत्ति ने पर्यावरण का बहुत नुकसान किया है। अगर यह प्रक्रिया रुकी नहीं तो वह दिन दूर नहीं, जब वैश्विक तापमान जरूरत से ज्यादा बढ़ जाएगा और जल प्रलय की आशंका मानव जाति को सताने लगेगी। 'ये शहर हैं' में शहरी जीवन में मिलावटीपन और अशुद्धता की चिंता व्यक्त की गयी है। इसका सीधा प्रतिकूल प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है। यहाँ खाद्य–सामग्री में मिलावट आसानी से देखा जा सकता है। इस कर्म में नेताओं, व्यापारियों और दलालों की भूमिका से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

'भीख के सिक्के' में नन्हें बच्चों की स्थिति के बारे में बताया गया है कि जिनके हाथ में अभी कॉपी–पेंसिल होनी चाहिए थी, उन्हीं

हाथों में भीख के चंद सिक्के हैं।

'मानस की मूरत' में प्रणय भावना शब्दबद्ध हुई है। वहीं 'नारी' कविता में स्त्री, नारी हितैषी का डंका पीटनेवाले को आईना दिखाती है। साथ ही कहती है–यह कैसा न्याय है कि न्याय का तराजू मेरे हाथ में दे दिया, किन्तु मेरी आँखों पर पट्टी बाँधने के बाद?

'वर्षा रानी' में तपती धरती, निराश किसान की आत्मवेदना का निरूपण है। धरती पानी की एक–एक बूँद को तरस रही है।'फटा भू हृदय रो रहा किसान/हर घर–द्वार बन रहा श्मशान।' इसीलिए वर्षा रानी से अनुरोध है अब देर न लगाओ।शीघ्र आओ।

'प्रिया आगमन' में प्रेयसी द्वारा प्रेमी के घर प्रथम आगमन की रोमांचकारी घटना का वर्णन है। तरह–तरह के भाव मन में हिलोरें लेने लगती हैं। उसकी आँखें बहुत आकर्षक व सुन्दर हैं, वही उसका बदन मोती–सा दमक रहा है।

'रानी दुर्गावती', चम्पारण और गाँधी ऐतिहासिक परिदृश्य को लेकर लिखी गई कविताएँ हैं। एक में स्त्री सम्मान की गाथा है, दूसरी में गाँधी द्वारा चम्पारण में किये गये साहसिक कार्यों की चर्चा है।

'मायूस चेहरा' में निराश लोगों को सान्त्वना देते हुए कहा गया है–'क्या ज्ञान नहीं तुम्हें?'/अंतस में सुख है गहरा/ आखिर क्यों है मायूस चेहरा?' यहाँ कबीर की याद आती है–'कस्तूरी कुंडली बसे, मृग ढूँढहि वन माहिं।'

'वसंत' पर दो कविताएँ हैं–'वसंत राग' तथा 'वसंत में' पहली कविता में विरह वेदना का भाव है, वहीं दूसरी में उल्लास, हर्ष और उमंग है। प्राणियों को युगों–युगों की तन्द्रा और आलस्य को छोड़कर वसंत ऋतु में जागने का आह्वान है।

'आजादी' आज भी बहुतों के लिए स्वप्न है। इसीलिए आजादी चाहिए छोटे टहलुआ को, खाप पंचायत से कुमारियों को, बंधुआ मजदूरों को, घूँघट में छुपी, परदे से ढँकी ललमुनिया को और सभी को।पढ़ने–लिखने की आजादी चाहिए।

'मोर पंख' कृष्ण के माथे पर सुशोभित है, वहीं वह आदिवासियों का आभूषण भी है। यह तुलसी, वाल्मीकि, कालिदास और वेदव्यास के हाथों की भी शोभा बढ़ा चुका है।'बुद्धवाणी' का मर्म यह है कि शांति साधना से मिलती है। इसीलिए यह शुद्ध और कल्याणकारी वाणी है।

'तवायफ' में एक स्त्री की पीड़ा, बेवशी और हृदय जनित आत्मवेदना की अभिव्यक्ति हुई है। हर दूसरी पंक्ति में, 'तो किसको गम है' की टेक है।तवायफ को आज भी उपभोग की वस्तु समझा जाता है। जो बहुत गलत है। वह भी किसी भी बेटी, बहन रही होगी, वह भी किसी की पत्नी–माँ बनने की उतनी ही हकदार है, जितनी की एक कुलवधू।

आज के युग में सचमुच 'भगवान है मोबाईल' इसे बड़ा लोकतांत्रिक माना गया है; क्योंकि यह किसी से किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता। यह छुआछूत नहीं जानता। अमीर–गरीब, ब्राह्मण–राजपूत और अछूत को भी समान–भाव से गले लगाता है।

'बड़े–बड़े बंगले' में आज जीवन के अलग रंग–ढंग आसानी से देखे जा सकते हैं। इन बड़े–बड़े बंगलों में मुश्किल से दो–चार लोग रहते हैं, जबकि आज भी लाखों–करोड़ों लोगों के सिर पर कोई छत नहीं है। वे रोड की पटरियों पर सोने को विवश हैं; क्योंकि कहीं छत है, तो पत नहीं।कहीं पत है, तो छत नहीं।

'गुलाब' अपनी मुस्कुराहट की कीमत काँटों के बीच रहकर चुकाता है। या सिर्फ प्रेम का ही प्रतीक नहीं, अपितु 'सद्विचार भावों में/संवेदना के चिह्नों में/मानवता के रूप में/ 'महकता' रहता है।'

'कल्पना' काव्य की उर्वरा भूमि है। इसके सहयोग से कविता अपना आकार ग्रहण करती है। कवि ने बड़ी संजीदगी और निर्भीकता के साथ स्वीकार किया है कि–

'लेखनी मेरी सारी अधूरी है। वास्तव में पूर्ण कुछ भी नहीं होता। पूर्णता एक प्रक्रिया है, जो निरंतर चलती रहती है, प्रारंभ से अंत तक।

'कवि' समय, समाज और साहित्य का प्रहरी होता है। इसीलिए उसकी चेतना हमेशा जागृत रहती है। वह 'रूढ़ियों आडम्बरों से दूर/ वास्तविकता की कसौटी पर/ जीवन को कसता है/ यह उसका कविधर्म है, इसीलिए वह कवि है/ यथार्थ लिखता है।

'नजमा' इस काव्य–संग्रह में अंतिम कविता है। इसमें बदलते वक्त परिवेश में तलाक की तकलीफ की ओर ध्यान आकृष्ट करवाया गया है।बेघर नजमा के दर्द को महसूस किया गया है। साथ ही कवि ने इस ओर ध्यान आकृष्ट करवाने की कोशिश की है कि आजकल–'जितने उलेमा हैं/ उतने ही फतवे हैं।' इसी की वजह से नजमा आज सदमे में है। वर्षों के रिश्ते को 'तलाक' शब्द के तीन बार बोल देने से समापन, उचित नहीं कहा जा सकता।जिस शब्द में जोड़ने की शक्ति नहीं, उसकी गलत अभिव्यक्ति भी उचित नहीं।

समग्रता में 'डेहरी' लोकजीवन से विषय–वस्तु, भाव–भाषा ग्रहण कर एक रचनात्मक पहल प्रस्तावित करती है। इस नव–सृजन का मूल्यांकन इसमें वर्णित विषय–वस्तु के रूप में किया जाना चाहिए न कि काव्योचित मापदंडों पर।यह युवा कवि का प्रथम प्रयास है, जिसमें भविष्य के प्रति आश–ही–आस है। विद्वानों का मानना है, नये पौधे की वृद्धि नहीं मापी जानी चाहिए। इससे पौधे की बृद्धि रुक जाती है। इस मत के आलोक में 'सर्जक की डेहरी' का स्वागत किया जाना चाहिए। भविष्य में 'डेहरी' का विस्तार आँगन के रूप में हो, ऐसी उम्मीद है।

समीक्षा

अभयदात्री कहानीकार मैत्रेयी

—डॉ0 एस. के. साबिरा
'Post Doctoral Fellow' हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–46
मो०–9848711684

आदिकाल से साहित्य की कई व्याख्याएँ की गयी हैं। उसको कई रूपों में परिभाषित किया गया है। स्वतंत्रोत्तर काल में जो साहित्य रचा गया, उसने अपना अर्थ एवं परिभाषा खुद अनेक अभावग्रस्त जीवन को साहित्य के माध्यम से मुख्य धारा से जोड़ने में न सिर्फ प्रयासरत है, बल्कि कई रचनाएँ ऐसी भी हुई हैं, जो चुपके से पीड़ितों के लिए रास्ता सुझाकर आगे निकल गयीं। कहीं–कहीं पाठक को सोचने पर मजबूर भी कर देती हैं। पारंपरिक अर्थों की पड़ताल कर नवीन अर्थ के गठन के लिए सोचने पर मजबूर कर देती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य अपने आपमें विलक्षण साहित्य हैं। मैत्रेयी पुष्पा गेयी है। आज पुनः उस साहित्य का अवलोकन करने पर उसके कई नवीन तथ्य उभरकर सामने आते हैं।

समय के साथ समाज में कई बदलाव आये हैं। समाज से जुड़ी कई चीजों ने नवीन रूप धारण कर लिया है। इसी क्रम में शोषण भी नया रूप लिया है। मिलकर भी न मिली स्वावलंबन शब्द फीके पड़ने लगे हैं। घर की चार दिवारी के बीच की गुलामी से बात शुरू हुई थी। अपने लिए एक कमरे की माँग थी। अर्थ को अपनी मुट्ठी में रखने की सोच पर जोर दिया गया था। राजनीति में सत्ता जमाने की आवश्यकता को महसूस किया गया था। सब कुछ होकर भी नहीं हो पाया। बात वही बोतल और शराब वाली हो गयी। बोतल तो बदल गयी, किन्तु शराब वही की वही रही। मुद्दे नए रूप में सामने आने लगे। ऐसे समय में एक बार फिर साहित्य के संदर्भ में बात की जाए, तो स्त्री पर केन्द्रित अपने साहित्य में मैत्रेयी जी ने अनेक पात्रों के माध्यम से चुपके से कई संदेश देते हुए निकल जाती हैं। स्त्री शोषण का शिकार होते–होते कई संदर्भों में वह शिकारी का रूप धारण कर शोषण का शिकार कर देती है। वार की मार खाते–खाते अनायास ही उसमें वार करने के गुण आ जाते हैं। बेशर्त है कि वह वार करने के लिए इच्छुक हो। अगर बदकिस्मत से किसी शोषित शिकारी का शिकार हो जाती है, तो उस समय वह अपने आपको खो देती है। इस खोये हुए स्व को पुनः पुनः प्राप्त करने के लिए भी मैत्रेयी ने कई कहानियों में कई रास्ते सुझाये हैं।

सहज जीवन बिताने के लिए उसको कितने इम्तहान देने पड़ते हैं और कितने ड्रास्टिक फैसले करने होते हैं। इस विषय को ध्यान में रखते हुए मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों का अवलोकन किया जाए, तो पाठक को कई मुँह खोले खड़े मुद्दों के समाधन भरे साधन यहाँ मिल सकते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों के पात्रों की निर्णयशक्ति से इस तरह की निर्भयों से उपेक्षित होने पर भी अपने जीवनको अपने अनुसार जीती हैं। शोषण का मुँहतोड़ जवाब देती हैं।

कहानी के आरंभ में स्त्री समाज का यथार्थ रूप दिखाई देता है। कहानी को अंत तक गढ़ी हैं। उन सबको स्वीकार करने से इन्कार करती हैं स्त्री सशक्तिकरण के जितने बाधक तत्व हैं। मैत्रेयी की स्त्री अपने आपको उन बाधक तत्वों से खारिज कर देती है। यह जब कहता है—'मैं तो अपने पेंशन की पीता हूँ। इन लौंडियों का मैं क्या करूँ?' कह दे भाग, तो कहता है—'किसी के संग भाग जाओ। यह सोचते ही मुझे इतना गुस्सा आया कि बाप को इतना मारा कि वह जमीन पर लेट गया। माँ इतनी डरपोक कि मुझे ही रोक रही थी। बस ऐसे निर्लज्ज बातों का सामना करने के लिए लड़की को मानसिक रूप में सशक्त होने की बात तो कई बार कही गयी है, लेकिन मैत्रेयी कहती हैं कि मानसिक ताकत के साथ–साथ शारीरिक ताकत का होना भी उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है। तभी तो ब्रजेश कहती है—'लड़कों द्वारा लड़कियों को छेड़ा जाना समाज में आम बात–सी हो गयी है। आम लोग इसको पंगा न लेने के एवज में खामोश हो जाते हैं। जबकि कानूनन यह जुर्म है। हमारे आए लड़की की मदद करे, उसको बचाये। मैत्रेयी इन सारे झंझटों में पड़ना नहीं चाहती। वह लड़की को ही इसके लिए तैयार कर देती है। 'आवारा न बन' कहानी में नीलू का सृजन खासकर इसी मकसद के लिए हुआ लगता है। नीलू बॉक्सिंग सीखकर कॉलेज में छेड़खानी करनेवाली लड़कों से भिड़ जाती है। बॉक्सिंग के हथकड़ी का इस्तेमाल करते देख पुलिसवाला कॉलेज के लड़के भी छेड़ते रहते थे। बात पुलिस तक पहुँच जाने के बाद भी नीलू खामोश न रही, मौका देखकर एक दिन उस लड़के की खूब धुलाई कर देती है। नीलू के सामने समस्या थी कि कबतक वह इस तरह एक के बाद एक से लड़ते रहेगी। अंततः उसने निश्चय किया कि 'मुझे पुलिस में जाना होगा। वहाँ हमारी भर्ती जरूरी है, हम जैसों के लिए ही। घर में इस बात को खोलकर क्या हासिल होगा? एक और अस्वीकृति। समाज में सदियों से कुछ खास महकमें बना दिया हैं। अगर लड़की को काम करने की अनुमति भी दी जाती है, तो उन्हीं क्षेत्रों में काम करना होगा, जिसके लिए समाज ने उसे इजाजत दी है। मैत्रेयी इस सोच को भी तोड़ देती हैं। इनके पात्र उन तमाम क्षेत्रों में काम करती हुई दिखाई देती हैं, जिनमें काम करने पर आक्षेप लगाए हुए हैं। नीलू और ब्रजेश बिना बोले पुलिस की नौकरी में चली जाती हैं। नीलू पुलिस वाले को जवाब देती हुई कहती है, 'तुमने कहा था न कि तेरी एक और कहानी 'मैंने महाभारत देखा था' की ब्रजेश कहती है—'मैम! लड़का–लड़की क्या अभिन्न हैं। सिर्फ शारीरिक संरचना ही उनको एक–दूसरे से भिन्न करती है। समाज ने शारीरिक संरचना के आधार पर एक को पहरा देने के लिए पहरे के काबिल

बनाकर उसको शारीरिक एवं मानसिक बल प्राप्त करने के सारे साधन एवं अवसर दिये, जबकि दूसरे को शारीरिक नजाकत की खान बना उसको पहरे के बीच रहने का आदि बना दिया। जबकि दोनों असंतुलित ढाँचे को संतुलित किया जा सकता है। जैसे राहुल सांकृत्यायन कहते हैं–'उन्हें घुमक्कड़ बनने दो। उन्हें दुर्गम एवं बीहड़ रास्तों से भिन्न–भिन्न देशों में जाने दो। राहुल सांकृत्यायन जी ने घुमक्कड़ शास्त्र में जो बात कही, उसको मैत्रेयीजी ने अपने स्त्री पात्रों के गठन में दिखाया है। 'मैंने महाभारत देखा था' की ब्रजेश हाँखतराँ से अपने एक लेख में प्रभा खेतान लिखती है कि 'स्त्री को यह विश्वास दिलाना होगा कि बदलाव और आंदोलन उसके अपने हित में है। उसको केवल दलित वर्ग की संज्ञा दे देना सह शिक्षा आदि के बावजूद आंदोलनकर्ताओं ने स्त्री की वैयक्तिक और उसके भावनात्मक पात्रों में प्रभा खेतान के लेख की सारी अपेक्षाओं को देखा जा सकता है। वस्तु से व्यक्ति बनने के क्रम को देखा जा सकता है। मैत्रेयी अपने पात्रों में न सिर्फ मुक्ति की चाह को जागृत करती है, बल्कि उनको मुक्त होती दिखाई देती है। 'मन नहीं दस–बीस' की चंदना अपने पर जबर्दस्ती थोपे गये रिश्तों का अंत कर देती है। अपनी इज्जत बचाते हुए उससे खून हो जाता है। जेल काटते हुए उसको अपने बचपन का साथी स्वराज मिलता है। स्वराज और न सुरक्षित रखने का कवच था उनके पास। फिर, किसी तीसरे आदमी की कैसी हो जाती? इसे तोड़कर अपने व्यक्तित्व को निखारती हैं। नवीन जीवन की ओर अग्रसर हैं यह स्त्रियाँ।

मंजिल को पाना आसान होता है। 'अब फूल नहीं खिलते' में झरना के साथ हुए अत्याचार का जवाब सारे स्टुडेंट्स एकजुट होकर देते हैं। शोषण का विरोध खुले आम होता है– 'एक सिवा। शोषित शोषण के रिश्ते में अपने आप जबतक बाँधे रखेगा, शोषित इस रिश्ते को बखूबी निभाते जाएगा। उस वक्त तक निभाएगा, जबतक कि शोषित स्वयं इस रिश्ते को तोड़ने की पहल नहीं करता। मैत्रेयी अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से यह पहल करवाती हैं। इस संदर्भ में कुछ इस तरह कहती हैं–'संवेदनाओं की क्रूरता नहीं जीत सकती। एक दिशा–निर्देश देती हैं। उसके इरादों को पुख्ता कर उसके लिए अनेक नये रास्तों को खोलते हुए दिखाई देती हैं। इसका सशक्त उदाहरण है, 'जवाबी कागज' कहानी के अंत में पढ़ते हुए ऐसे नहीं लगता कि यह एकमात्र कहानी है, बल्कि हमारी रूढ़िवादी व्यवस्था द्वारा स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचारों का वास्तव में जवाब है । एक का दूसरा स्त्री को दिखाया जानेवाला अभय हस्त है।

अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए स्त्री को भी भाग लेना होगा, इसीलिए यह गिरजा को गाँव की मुखिया के रूप में चित्रित किया है–वह सोचती है–'राजनीति में आने वाली लड़की को खेल के मैदान और समाज सेवारूपी गैर सरकारी आंदोलन और पुलिस विभाग जैसे पुरुष वर्चस्व वाले क्षेत्रों में भी सक्रिय रूप से दाखिल कर एक नयी व्यवस्था की कल्पना की है उन्होंने।

समाज में लड़की का जीवन दूसरों के संदेहों से बँधा हुआ है। यहाँ से हटकर और किसी काम की इजाजत हमारे यहाँ आसानी से नहीं मिलती। खेल–कूद में भी खास खेलों का चयन लड़कियों के लिए किया गया है। खेल को कैरियर के रूप में अपनानेवाली लड़कियों को किन–किन मुसीबतों से होकर गुजरना पड़ता है किसी से छिपा नहीं है। अपने आपको खेल के समर्पित करनेवाली लड़की खुले आम घोषणा करती है–'मेरे कैरियर को कोई नहीं मिलती, तो उसका उल्लंघन करना ही जिंदगी के लिए वाजिब है। आगे बढ़ने के रास्ते में भी ऐसे कार्य कर दिये जाते हैं, जहाँ सामनेवाले को इसकी भनक भी नहीं होती। विपरीत परिस्थितियों में अपने रिश्तों को बचाते हुए विरोध का जवाब किस तरह दिया जा सकता है 'फैसला' कहानी में देखा जा सकता है। अपने साथ होनेवाले अन्याय का खुलकर विरोध न कर पाने की सूरत में जो निर्णय वह लेती है, वह पुरुष की निर्णय के अधिकारों के दंभ को चकनाचूर करके रख देती हैं और पुरुष को इसकी भनक तक नहीं होती। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए रणवीर अपनी पत्नी बसुमति को प्रधान पद के लिए चुनाव में खड़ा करता है। वह जीत भी जाती है, किन्तु बागडोर अपने हाथ में रखता है। सारे फैसले वही करता है। अगले चुनाव में बसुमति सिर्फ एक फैसला करती और रणवीर चुनाव हार जाता है। रणवीर को बसुमति के इस फैसले की भनक भी नहीं लगती। बसुमति अम्माजी को लिखे पत्र में लिखती है–

'एक वोट।
विश्वास नहीं कर सकी मैं।
सहसा मेरे भीतर सब कुछ डाँवाडोल होने लगा।
अरे मेरे अग्निदेवता! ओ सप्तपदी दिलानेवाले महापंडित!
सहचरी बनाकर रणवीर की पत्नी के रूप में विदा किया था।
लेकिन मैं क्या करती?
अपने भीतर की ईसुरिया को नहीं मार सकी।'

अपने भीतर की ईसुरिया को न मना पाना कई मायनों में सारगर्भित है। हर लड़की करती हैं। पूरी तरह से अपने स्त्री पात्रों को तैयार करती हैं। हर परिस्थिति का सामना करने की हिम्मत उनमें होती है। 'पियरी का सपना' की रति तिवारी कॉलेज की यूनियन अध्यक्ष चुनी गयी। कॉलेज के समय से ही राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। छात्रों के आपसी झगड़ों में मार खाने से भी पीछे नहीं हटती। वह कहती है– 'मैं...मैं इनसे हारूँगी!'

प्रभा खेतान लिखती हैं कि 'स्त्री न स्वयं गुलाम रहना चाहती है और न ही पुरुष को गुलाम बनाना चाहती है। स्त्री चाहती है मानवीय अधिकार।' जैविक भिन्नता के कारण वह स्वीकार करे कि स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार मिलना चाहिए। स्वाभाविक है कि मिलनेवाले अधिकारों के साथ स्त्री की जिम्मेवारियाँ भी बढ़ेंगी। किये गये चुनाव के प्रति उसे मैत्रेयी पुष्पा अपने स्त्री पात्रों के बारे में कहती हैं कि 'ये तो संवेदना की धरती पर निर्णय खुद करनेवाली हर स्त्री में मैत्रेयी के स्त्री पर प्रभावित हुए और इनके स्त्री पात्रों ने अत्याधुनिक समय की स्त्रियों को प्रेरणा दी है। बात जो भी हो अपनी कहानियों में मैत्रेयी पुष्पा अभयदात्री का रूप ग्रहण कर चुकी हैं।

गीत

हिन्दी है जन मन की भाषा

डॉ० अश्विनी
भागलपुर
मो०–9470023033

हिन्दी नहीं तो कुछ भी नहीं है
ताने नहीं है असमां भी नहीं है
हिन्दी हमारा वजूद है दोस्तो
हिन्दी जहां है सबकुछ वहीं है

हिन्दी है जन मन की भाषा
यह तो अबकी प्यारी है
माँ की वाणी प्राण शक्ति यह
यह तो राज दुलारी है

घर में रोती खड़ी देखती
अंग्रेजी की दासी है
फिर भी शान से कहते हम सब
हिन्दी मथुरा काशी है

गर हिन्दी का कत्ल हुआ तो
हम भी बन न पायेंगे
हम सब माँ के द्रोही होंगे
कातिल भी कहलायेंगे

माँ का गौरव गान है हिन्दी
शान है हिन्दी, मान है हिन्दी
गीता वेद पुराण है हिन्दी
भूत, भविष्य, वर्त्तमान है हिन्दी

हिन्दी हिन्दुस्तान हमारा
ज्ञान सूत्र विज्ञान हमारा
अखिल विश्व अभियान हमारा
हिन्दी है कल्याण हमारा

इनकी रक्षा में लड़ना है
चाहे जीना या मरना है
गर दामन में दाग लगा तो
सबको मर जाना है

हमने आजादी पायी है
बजी आज भी शहनाई है
सच बतलाना भाई मेरे
क्या आज भी तरुणाई है

हिन्दी का जो दीप जला था
अंधेरा भी भाग चला था
हिन्दी का परचम लहराया
गाँव खेत खलिहान चला था

मिहनत कश तकदीर बनातें
हम सुन्दर तस्वीर सजाते
हिन्दी की वगिया महकी है

श्रद्धेय संपादक जी
हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका सुसंभाव्य

पत्रिका का अक्टूबर अंक मिला, पढ़कर अत्यन्त हर्ष हुआ, उच्चस्तरीय भाषा, सारगर्भित सम्पादकीय, सरस काव्य, समीचीन कहानियाँ, निष्पक्ष समीक्षा के साथ ही अन्य साहित्यिक गतिविधियों की सूचना देती यह पत्रिका, हिन्दी भाषा में समय की शंख ध्वनि है जिसमें व्यक्ति, समाज एवं उसके भावों की सहज अभिव्यक्ति हो रही है। मनोरंजन सहाय सक्सेना लिखित कहानी हृदय का गीत एक नई दिशा के द्वार खोलती है जिधर स्वाभिमान का सूर्य चमकता दृष्टिगोचर हो रहा है।

पत्रिका भेजने के लिए कोटिशः धन्यवाद।

तुलसी देवी तिवारी
वरिष्ठ साहित्यकार
बिलासपुर (छ०ग०)
मो०–9907176361

कविता

अरुणा शानबाग

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
भागलपुर
मो०–9934095639

22 नवम्बर 1973 के दिन जहरीली मिठाई खाने के बाद कई बच्चे मुम्बई महानगरपालिका के इ.एम अस्पताल में लाये गये थे। उन बच्चों की दिन भर देखभाल और सेवा करने के बाद अरुणा, जो उस समय 25 वर्ष की थी अस्पताल के तलधर में कपड़े बदलने पहुँची थी, जहाँ वार्ड व्याय सोहनपाल ने कुत्ते की चैन अरुणा के गले में बाँध, उसकी आवाज बन्द रखने इस तरह दवाया कि उसके मस्तिष्क में आक्सीजन न पहुँच पाई।

सोहनपाल ने माहमारी से गुजर रही अरुणा से गुदा मैथून किया और अगले दिन सवेरे मेट्रेन नर्स वेलिमाल को एक सफाई कर्मचारी का संदेश मिला कि एक नर्स फटे कपड़े में बेसमेन्ट में बेहोश पड़ी है और उसके गले में कुत्ते बाँधने वाली चैन बंधी है। सोहनपाल ने अरुणा के गले की सोने की चैन और सगाई की अंगूठी भी चुरा ली। अरुणा इस पाशविक हमलों में इतनी आहत हुई कि कोमा में चली गई। केइएम अस्पताल के अधीक्षक ने जाँच कर्त्ताओं से गुदा मैथून की बात छिपाली और पुलिस ने सिर्फ हत्या की कोशिश और लूट का मामला दर्ज किया। परिणामस्वरुप आजीवन सजा के बदले, सोहनपाल को मात्र सात साल की सजा हुई और इसके बाद वह शान से अपनी जिन्दगी की रफ्तार में है और अरुणा अपनी बयालीस वर्ष की त्रासदी को भोग, आज 18 मई 2015 को 66 वर्ष की उम्र में दुनिया से विदा हो गई। संदर्भित कविता–

इस देश के
एक दु:खद अध्याय के
पृष्ठों की अरुणा
अपनी जड़ों से कट
आई थी स्वप्न ढ़ोती
मुम्बई,

आज स्वप्नों की वह जिल्द
समा गई
भाँय–भाँय की दोपहरी में
शून्य को विस्तार देती

पर छोड़ती गई वह
अपने अंधेरे जीवन के
पृष्ठों के
कई अनुत्तरित सवालें
जड़ कर आश में
अपनी आकाश हुई
दोनों आँखें/दरवाजे पर
जहाँ पसरा है मौन
मरघट सा

और हुजूम में
नर्सों की यादों का
ग्लेसियर
पिघल रहा है आँसू बन

अब अन्दर कमरे में
अरुणा नहीं
अरुणा की पीड़ा का आकाश
व नर्सों का खालीपन है
और बाहर फड़फड़ा रहे हैं
उनके बयालीस वर्षों की
त्रासदी के खुले पृष्ठ

काश! यह कमरा
हो जाता एक स्मारक
लोकतंत्र का
ताकि जान पाती दुनिया
इस सभ्यता के पुरुष दंश को
कि एक अरुणा के गले में
कुत्ते की चैन बाँध
उसे अपने नख–दंतों के बीच
किस तरह दबोचा था
एक पुरुष भेड़िया ने
अपने दुष्कर्मों के भंवर में
जिससे होकर वह
श्लथ, निस्पन्द
बयालीस वर्षों तक
ढ़ोई थी अपनी लाश
इसी कोठरी में
नर्सों की मानवीय संवेदनाओं के
मिशन में
मूल्यों की गाँठ पर

इस त्रासदी की अरुणा
जो न चल पाती थी
न बोल पाती थी
न सुन पाती थी
न देख पाती थी
वह आँखों से कुछ
कहना चाहती थी
और उसके न कह पाने की स्थिति
के आँसू पर
नर्सें भी रो देती थी साथ–साथ
और उन्हें घेर खड़ी हो कहती थी
मत रोओ अरुणा
हम सभी इधर हैं न तुम्हारे साथ

अरुणा की इस त्रासदी में भी
न साथ हुए थे कभी उनके परिजन
और न उनके मंगेतर
जिनकी सगाई की अंगूठी पहने
उसने भोगा था एक दानव को
सीमाहीन नृशंसता में
पर इस ऊसर मंगेतर ने
अपने पुरुष पाखण्ड में चाहा था
बलात्कार को हवा न लगे
मौसम को चिढ़ाती
संवेदना की डाली
सूख लटकी थी
न थी संभावना कहीं कोई पत्ती के
उग आने की

और अस्पताल के अधीक्षक के
दोगलेपन ने
छिपा लिया था
गुदा मैथून की बात
जाँच दल से

'स्मृतियों' में फिर
पुरुष जगा था
और नारियाँ नाचीज होती रहीं

नतीजतन न मिला न्याय
देश की आधी आबादी को
वह पुरुष–ग्रन्थ की
अन्या की अन्या ही रही

और आज जब सत्य उजागर है
तो क्या इस देश का न्यायपीठ
स्वत: संज्ञान लेगा?

आधी आबादी
हाथ फैलाए खड़ी है...।

कविता

प्रकृति

मालिक राजकुमार
ए 1/28 मेन वाली नगर,
दिल्ली–87
मो०–9810116001

वह उदास बैठी है बहुत
अकेली ढेरों गिले लेकर
उसने जन्म दिया
फिर निरन्तर पाल रही
उम्मीद रखकर
संतान बैठेगी पास
सामर्थ्य से दूर करेगी मुश्किलें
आँसुओं को पोंछ राहत देगी
कितनी कहानियाँ, किस्से
शिकवे सुनकर

सुनने को कोई भी नहीं
न समय है न मंशा किसी के पास
सुने उसकी सीख या
व्यथाओं की दास्तान बैठकर

कोई आ भी गया भूल से
कभी थोड़ा पास तो
खेलता है धरोहर से
चला जाता है गहरे घाव देकर

निराशा एकान्त भोगती प्रकृति
चीख पड़ती है अचानक
टपका डालती है कुछ आँसू
छाती पर दोहत्थड़ मार
आह लेती है स्वयं को कोसकर

थोड़े–से समय में सामान्य हो
सोचती है मिटा लूँ अपनी हस्ती
चल दूँ रसातल के लिए या
डूब मरूँ समन्दर में जाकर

कोसने लगती है खुद को
माँ होकर कैसे करूँ यह सब
कैसे मिटा दूँ अपने साथ
अपनी संतानों को सोचकर

माँ की तरह देती हैं दुआएँ
बढ़ती रहे तुम्हारी वंश बेल
शायद तुम्हारी संतानों में
कोई कभी ले सुध आकर
यह सोच मुस्कुरा उठती है प्रकृति।

2

संघर्ष

हर टीस को निकाल फेंका
हर फाँस को खींच निकाला
लंबी लड़ाई शायद नियति थी
हर क़दम फूँक कर रखा
दिल का डर आसमां में उछाला
शिक़स्त से बड़ा दुश्मन नहीं
बचपन ने ही समझा डाला
जब शिक़स्त मिली चीर दिया उसे
सारे हार के कारण निकाले
सबका अचार बना डिब्बे में डाला

सहयोग भी मिलता है सबसे
करके कोशिश ये जान लिया
सबके बनजाने का अंदाज
दुखों को चूस लेता है दोस्त
जो मिला अपना बना डाला।

श्री शैलेन्द्र चतुर्वेदी
94 चौवान मोहल्ला,
जिला–फिरोजाबाद, यू.पी.

सन्नाटों की लिपटी

सन्नाटों की लिपटी वो दोपहर कहाँ अब
धूप में आधी रात का सन्नाटा रहता था
लू से झुलसी दोपहर में अक्सर
चारपाई बुननेवाला अब
कान पर रख के हाथ, इक हाँक लगता था
चार...पाई...बनवा लो
खस खस की टटियों में सोये लोग अंदाजा कर
लेते थे....डेढ़ बजा है
दो बजते–बजते जामुनवाला गुजरेगा
जामुन...ठंढे...काले....जामुन
टोकरी में बड़ के पत्तों पर पानी छिड़क के
रखता था
बंद कमरों में .....
बच्चे तिरछी आँख से लेटे–लेटे माँ को देखते थे
वो करवट लेकर सो जाती थी
तीन बजे तक लू का सन्नाटा रहता था
ठंढ़ाई.....
पाँच बजे के आस–पास हापड़ के पापड़ आते थे
लो हापड़ के पापड़
लू की कन्नी टूटने पर छिड़काव होता था
आँगन और दुकानों पर
बर्फ की सील पर सजने लगती थी गड़ेरिया
केवड़ा छिड़का जाता था
और छतों पर बिस्तर लग जाते थे जब
ठंडे ठंडे आसमान पर
तारे टिमटिमाने लगते थे
सन्नाटों की वो .....
धूप ...।

कविता

कविता विकास
डी–15, सेक्टर 9
कोयलानगर, धनबाद

भावभींनीं बात हो

दंभ–अहंता से दूर
सहज यथार्थ हो अपनी परिभाषा
रीत न जाए मधुरस जीवन का
ऐसे आकर्षण का प्रतिपल
उठता विशब्द ज्वार हो

मान–अपमान से परे
एक घरौंदा के राजा–रानी हम
पथ प्रस्तर हो या शूलों भरी
प्यार–मनुहार का अविरल
कलकल निर्मल प्रवाह हो

द्वन्द्व–प्रतिद्वन्द्वको भूल
नैनों के दर्पण में हो प्रतिबिंबित
दो आत्माओं की प्रणय अभिलाषा
जल–सा पारदर्शी अंतस से
प्रिय भावभींनीं बात हो

दुराव–छिपाव को छोड़
सुन्दर–सी जीवन बगिया में
विश्वास सलिला निर्बाध बहे
कुछ अर्पण कुछ समर्पण का
वितत जीवन दर्शन हो।

2

मन समंदर हो चला

भरकर पीड़ जग का सारा
मन समंदर हो चला
उच्छृंखल विकल लहरें
भावावेश में उठती गिरती
तोड़कर सीमाओं का पाश
तट पर थक पसरती
बूँद–बूँद आलिंगन करके
मन घट रीत चला
बनते नहीं मेघ अब
नैनों के आकाश में
बेमौसम संतृप्त हुआ
किसी के इंतजार में
विस्तृत वीरानगी को तकते
मन बंजर हो चला।
पनपते नहीं अरमां नए
बीत गये वो तितली के दिन
जीवन रंग धूमिल हुआ
बोझल मन तुम बिन
ज़ज़्ब कर अंतर के उन्माद
मन रेतीला हो चला।

3

तुम्हारे नाम का

होते नहीं कभी तुम मेरे पास
बस तुम्हारे होने भर का अहसास
क्या–क्या गज़ब ढ़ाता है
खिल उठते हैं शीत के कांस
साथ गुलमोहर मुस्काता है
देहगन्ध की परिचित सुवास
हवाओं में मिश्रित आभास
बोझल शामों में रंग भरता ह
बज उठते हैं वीणा के तार
मन का पाखी चहक जाता है
जीते हैं हम लेकर यह आस
लौटेंगे कभी तो वो पल खास
कहते हैं इतिहास दोहराता है
टूटते तारों को ढूँढ़ती है निगाहें
चाँद कुछ नीचे सरक जाता है
पतझड़ में उघड़े हैं लिबास
हिय में फिर भी उज़ास
आशाओं में तरवर फ़लता है
और एक बीज अंतस में
तुम्हारे नाम का जीता है।

4

माटी की देह

तरु के वृंत पर खिलता सुमन
देख आज जग की खुशहाली
इतरा रहा भाग्य पे अपने भुवन
क्या पता कल आये न आये हरियाली
क्षणिक हैं दिन बहार के
क्रूर हाथों से कल कोई माली
गूँथ कर तुम्हें हार प्रणय के
छीन ले सौंदर्य की लाली
रूप लावण्य का मत दंभ भर
देख लालायित मधुप को
मदहोश–सा अंग–अंग चूमता
आतुर तुम्हारे रसपान को
मुट्ठी का रेत–सा है ज़ीना
ज़ान यह मन होता विचलित
हरि–शीश पर जाने कब चढ़ जाना
यही अनिश्चित है निश्चित
पछताएगा रिश्तों से कर नेह
चार दिन का है हँसना गाना।

कविता

डॉ० छवि निगम
नोयडा

सविता मिश्रा
खंदारी, आगरा
मो०–9411418621

कविता मेरी

जब जब जन्म लेती है
न बजती है कहीं काँसे फूल की थाली
न्योछावरें न कहीं बिखेरी जातीं
शर्मिंदा हँसी–सी पल्लू में ढाँप लेती बस उसे मैं
दिल से आह–सी उठती, पन्नों पर बिखर जाती है कविता मेरी
लता पता बावरी–सी यहाँ वहाँ फिरती
ऊँची–सी फ्रॉक पहने दो पोनिटेल बनाये
इक्खट दुक्खट खेला करती कविता मेरी
कहाँ हुई मयस्सर उसे कभी कुर्सी नक्काशीदार
या हौले झूलती आराम कुर्सी कोई
किसी दोछत्ती बरामदे सहन में, है इक सुकून का कोना उसका
बस ख्याल–सी आती है, ख्वाब–सी उड़ जाती है कविता मेरी
मेरी कविता तो वक्त से होड़ लेती है
नींद अपनी खुलने से पहले ही रसोई में होती है
कटती है पिसती है धीमे धीमे भुनती है
भींगती है गूँथती है गोल गोल बिल जाती है
तपती है सिकती है बिना खुशी फूल जाती है
जाने कहाँ आँखों में नमी बचाये रखती है फिर भी कविता मेरी।
लंच बॉक्स में जा कभी सबक सीख आती है
ऑफिस का चक्कर लगा सड़क भी नाप आती है
झाड़ी बुहारी फटकारी जाती है घर में
रगड़ घिस धोई सुखाई सँवारी भी तो जाती है
छिपाने को उघड़न, पैबंद जड़ो तो कराह उठती है कविता मेरी
ब्याह दी न जाये कहीं उमर छिपा रखती है
चिंहुक उठती है, भभकती है कभी,
कभी सहम तो कभी मुखर हो जाती है
जितना कतरी जाती है उतनी ही जुड़ती जाती है
नीम अँधेरे रौशनी की झिर्री तलाशती सपना बन मुझे जगाती है
शाम ढले झोंके सी सहला जाती है
देह की बंदिशें नहीं उस पर
फिर क्यों तन्हा ही रह जाती है कविता मेरी।

उफ गर्मी बहुत है रे

उफ गर्मी बहुत है रे
पैसे कौड़ी रह रह दिखाए
पास खड़ी खूब इतराए
मँहगी से मँहगी साड़ी पहने
गले हीरों से लादे गहने
उफ गर्मी बहुत है रे...
मँहगे पार्लर में जा के आये
कृत्रिम सुन्दरता पर भी इतराए
बालों की सफेदी मँहगे कलर से छुपाये
पैडी–मैनी क्योर न जाने क्या–क्या करवाए
दाँत डॉक्टर से चमकवाये
अपनी हर कुरूपता छुपाये
उफ गर्मी बहुत है रे...
पति की नौकरी पर इठलाये
रह रह बड़ा अफसर बतलाये
भले पति देता न हो रत्ती भर भाव
कहती जमीं पर रखने नहीं देता पाँव
कहती फिरे फूलों की सेज पर सोये
पति करता खूब प्यार मुनादी करवाए
अपने प्रेम की झूठी तस्वीरें दिखलाए
उफ गर्मी बहुत है रे....
बच्चों की बड़ाई करते नहीं अघाए
रह रह उनकी कामयाबी बतलाए
फेल हुए को भी पास दिखाए
उनकी नौकरी पर भी इतराए
असंस्कारी को संस्कारी जतलाये
अच्छी खासी आई शादी भी ठुकराए
उफ गर्मी बहुत है रे...
जताती सास ससुर की करती सेवा
पर चुप्पे–चुप्पे खाती रहती है मेवा
सूखी रोटी परोस कहती ला जेवा
पति सामने हो तो मुस्काती रहे
पीठ पीछे सास–ससुर को आँख दिखाए
बुजुर्ग देख इसे हकलाय
उफ गर्मी बहुत है रे.....

कविता

कृष्ण मोहन सिन्हा 'किसलय'
भागलपुर
मो०–8051491801

आदमी

है भीड़ में शहर
अजनवी हर आदमी
आदमी ही आदमी पर
मिला नहीं इक आदमी

हर जगह इस जहाँ में
रो रहा है आदमी
नफरत की आँधियों में
पल रहा है आदमी
कपड़े रिश्तों के नित
बदल रहा है आदमी
खुद से खुद को भी
छल रहा है आदमी
जिन्दगी जीये तो कैसे
इस जहां में आदमी
जानवर से वद्तर
मक्कार यहाँ आदमी

बाजार सी इस जहाँ में
बिकता रहा आदमी
बोलता अन्दर आदमी के
एक और भी है आदमी

खुल के न बातें कर रहा
आदमी से आदमी
घर अपना है, पर
डर रहा है आदमी

दीये रात दिन जला
आदमी तलाशता रहा
नहीं मिला आदमी को
कोई भी इक आदमी...।

ग़ज़ल

विज्ञान व्रत
नोएडा
मो०–9810224571

उसने खुद को पाने तक, छाने हैं तहख़ाने तक
बस किरदार बचाने तक, जिन्दा मर जाने तक
सिर्फ मुझे ही सोचेगा, वो मुझ–सा हो जाने तक
मुझको ढूँढ़ न पाएगा, मुझ में गुम हो जाने तक
खुद से बेपहचान हुआ, इक पहचान बनाने तक
जाने कितनी बार मरा, वो आख़िर मर जाने तक।

(2)
जो उगेगा, वो बढ़ेगा, जो बढ़ेगा, वो फलेगा
जो फलेगा, वो पकेगा, जो पकेगा, वो झरेगा
जो झरेगा, वो मिटेगा, जो मिटेगा, वो उगेगा।

(3)
आपका ये मुस्कुराना, और आँखें डबडबाना
आपका सोचा हुआ ना, आपको मैं मिल गया ना
आप पहले जो मिले थे, क्या वही हो सच बताना
देखते हैं वो कहीं पर, और मुझपर है निशाना
रो पड़े हैं देखकर सब, आपका यूँ मुस्कुराना
लो बताता हूँ तरीक़े, आप मुझको यूँ हराना

(4)
अब तो उसको मरने दो, एक ज़ख़्म है भरने दो
वो भी रंगत बदलेगा, बस ये दौर गुज़रने दो
वो खुशबू ही खुशबू है, उसको सिर्फ़ बिखरने दो
लोग उसे पहचानेंगे, मेरा रंग उतरने दो
वो चमकेगा सूरज–सा, बस अँधियार पसरने दो
मैं भी सच–सच कह दूँगा, उसको सिर्फ़ मुकरने दो।

ग़ज़ल

सदानन्द सुमन
रानीगंज, मेरीगंज,
अररिया (बिहार)

ये ज़मीं, ये आसमाँ, ये सितारे सारे
तुम्हारे कल थे, आज भी तुम्हारे सारे

निज़ाम क्या ख़ूब है इस दुनिया का देखिये
बेसहारे बेसहारे, सहारों को सहारे सारे

जिनका दावा था, रुख हवा का बदल देंगे
बुझ चुके ऐसे दहकते वे शरारे सारे

तमाशा कैसा ये अज़ब, सितम सहते फिर भी
न कहीं जुबिश फ़कत, राम ही पुकारे सारे

तुमको खुद की है फ़िकर ख़ुद की सोचो
ग़म ज़गाने के सुमन हैं हमारे सारे

(2)
ये हर सितम ज़माने में दहशत क्यूँ है
दिलों में ख़ौफ़, चेहरों पे दहशत क्यूँ है

क्या करना जहाँ सच को गुनाह कहते हैं
फिर ये कहना कि चुप हो ये तोहमत क्यूँ है

जिधर भी देखता है भीड़ तंगहालों की
तिरी दुनिया में या रब्बा इतनी गुरबत क्यूँ है

जब भी छिड़ता है जिक्र ज़रूरी मसमला का
जुबाँ से तेरी टपकती ये बतरस क्यूँ है

जो कहो, तो साफ खुल के कह ही डालो
बात उलझाने की तिरी ये फितरत क्यूँ है।

ग़ज़ल

अनिरुद्ध सिन्हा
गुलजार पोखर,
मुंगेर (बिहार)
मो०–9430450098

खुद से रूठे तो मौसम बदल जाएँगे
दास्तां बनके अश्कों में ढ़ल जाएँगे
रास्ते जब बनाओगे घर के लिए
अंधियों के इरादे भी टल जाएँगे
हम वो शीशा नहीं वक्त की आंच में
रफ्ता–रफ्ता किसी दिन पिघल जाएँगे
मूँदकर अपनी पलकें ज़रा देखिये
आँख में चंद सपने मचल जाएँगे
याद आएँगे तन्हाइयों में तुझे
जब तेरी राह से हम निकल जाएँगे।

2
जिन परिन्दों के नए पंख निकल जाते हैं
उनके उड़ने के भी अंदाज़ बदल जाते हैं
हम नहीं और कोई लोग यहाँ होंगे
हाथ की चंद लकीरों से बहल जाते हैं
कब तलक़ आप यहाँ सिर पे रखेंगे सूरज
धूप में ज़िस्म क्या ज़ज्बात पिघल जाते हैं
लोग मुट्ठी में समुंदर जो लिए रहते हैं
पाँव उनके भी कभी रेत पे जल जाते हैं
हम तो दीवार शराफ़त के लिए बैठे हैं
बंद रखते हैं जुबां दर्द में ढल जाते हैं।

3
फासले तोड़ डाले गए, ग़म नहीं ज़ब संभाले गए
बेअसर जिनके साये हुए, वे घरों से निकाले गए
इन दरख़्तों की आगोश में, जुल्म के नाग पाले गए
हर दफा अपने हिस्से के ग़म, सुर्खियों में उछाले गए
हाथ खाली नज़र के लिए, लोग सपने उठा ले गए।
सन्नाटों की वो दोपहर कहाँ

ग़ज़ल

ज़माना प्यार के

चाँदमुंगेरी
2 सी/1–141
बोकारो स्टील सिटी, बोकारो
मो०–09204093040

ज़माना प्यार के शैदाई का अगयार होता है
मिटाने दिल की चाहत को सदा तैयार होता है
पहुँचकर मंज़िलें, मकसूद पर भी कुछ नहीं मिलता
मुसाफिर इस तरह रुशबा यहाँ हर बार होता है
तड़पता है, मचलता है, जुबाँ से कुछ नहीं कहता
मुहब्बत दिल में जो रखना बड़ा ग़मख़ार होता है
मुसलसल प्यार से जन्नत यहाँ हरसू नज़र आता
जहन्नुम वह मक़ां होता जहाँ तक़रार होता है
किसी ने सच कहा ये ज़िस्मो ज़ां जलता है फुरकत में
बिना दिलदार के ज़ीना बड़ा दुश्वार होता है
न पूछो मुन्तज़िर होकर निहारा किसको मैं करता
मुझे इस चाँद में महबूब का दीदार होता है।

2.
कल की बातें कल करेंगे, आज़ की बातें अभी
किसलिए आए यहाँ हम जानते हैं यह सभी
अपने हक़–अधिकार की ख़ातिर खड़े अब हो गये
तुम सुनोगे जब हमारी, हम सुनेंगे तब तभी
अब तलक तुम गीत खुद के यश में बैठे गा चुके
कुछ हया है शेष तो औरों की भी गाओ कभी
टूटकर बिखरे जनों का बस यही ऐलान है
हम नहीं घृणा के पोषक जानते हैं प्यार भी
चाँद दीपक बुझ गया जो, मोल क्या उसका रहा
आग जब लगती है मुख में, रौशनी मिलती तभी।

डॉ0 मंजरी पाण्डेय,
बरईपुर, सारनाथ, वाराणसी

मुद्दत के बाद कोई तो अपना लगा मुझे
दिल को सुकून मिल गया ऐसा लगा मुझे
माँगी कहाँ कहाँ पे मोहब्बत की रोशनी
अपना ही दिल जला तो उजाला लगा मुझे
बिछड़े हुए तो उनसे जमाना गुजर गया
दिल से बहुत करीब हमेशा लगा मुझे
धोखा कदम कदम पे रहा जिंदगी के साथ
चाहा छुवें तो अपना ही साया लगा मुझे
अब नगम–ए हयात को छेड़ें भी किस तरह
साजे वफा का तार भी टूटा लगा मुझे
टूटा कभी न रिश्त–ऐ उल्फत का सिलसिला
इतना हसीन दर्द का रिश्ता लगा मुझे
छेड़ा गया तो रंज हुआ मुझको 'मंजरी'
हँसता हुआ गुलाब तो अच्छा लगा मुझको

मंजु गुप्ता
मंजु गुप्ता, मुम्बई
मो०–9833960213

मंज़िल को पाने के लिए मुक़द्दर चाहिए
ज़ज्बा हो उड़ानों का तो सिक़न्दर चाहिए
दिल के मकां में न हो बसेरा तन्हाई का
प्यार महक़ाने मुमताजी असर चाहिए
ईमान की राह कुचलकर बना व्यापम देश
फिर जगाने बुद्ध–गाँधी की लहर चाहिए
काला हुआ दिवस अब कैसे करें उज़ियारा
जग रौशन करने प्रेम–अमन की नज़र चाहिए
मौसमी आग से झुलस रहे जग–घरौंदे
संतुलनी बयार वास्ते बोना शजर चाहिए
आतंकी अत्याचार 'मंजु' बर्बाद करे वतन
गद्दार मिटाने हौंसलों का संमदर चाहिए।

गज़ल 2
पतझड़ में तुम बसन्त सा मचलते हो कैसे
तुम मौसम की तरह रंग बदलते हो कैसे
पाँव ज़मीन से रख़ आसमां के लिए
दौलत कामयाबी की बिखेरते हो कैसे
ता उम्र अपने ज़ख्मों को दिल में छुपा के
ज़ग के तानों को होंठ पे सिलते हो कैसे
द्रौपदी अब हर घर–चौराहे पर लूट रही
न्याय को आँख मूंद 'मंजु' पलटते हो कैसे।

लघुकथा

धुंधली यादें

रजनी गुप्ता
संत जोसफ स्कूल, भागलपुर
मो०–9431516550

वह शाम बड़ी ही कष्टदायक थी जब किसी पार्क में जिगर के टुकड़े ने हमें घूमते देखा। मुझे अतीत याद आ गया। एक ठुकराई सी जिंदगी जीने को मजबूर थी।

बेटे–बहु ने सामान बाँधना शुरु कर दिया। ऐसा लगा जेसे तीर्थ यात्रा की तैयारी हो। एक वृद्धाश्रम में मुझे छोड़ दिया गया।

वर्षों पहले पति के गुजर जाने के बाद बड़े जतन से बेटे को इस लायक बनाया था। सरकारी नौकरी मिल गई। विवाहउपरांत परिवार बस गया और छोटे–छोटे बच्चे घर में आ गए।

बेटे–बहु के काम पर जाने के बाद सारी जिम्मेदारी मैंने खुद उठा ली। लंच तैयार करना बच्चे के पानी बोतल, कपड़े सबकुछ का ख्याल रखती थी। फिर भी न जाने कौन सी कमी थी। बहु ने बेटे के कान भर दिये माँ केवल अशांति फैलाती है क्यों न हम इन्हें वृद्धाश्रम छोड़ आएँ और अपनी जिंदगी को अपनी तरह से जियें।

अगली सुबह मुझे तैयार कर बेटे–बहु ने वृद्धाश्रम छोड़ दिया। सुबह–शाम भजन और बेटे–बहु की कथा से दिन का आरंभ होना था। समय अपनी रफ्तार से चला जा रहा था। आश्रम में मैं अनाथ वृद्धा अंकित थी।

एक अमेरिका के विधुर ने भारतीय विधवा के लिए आश्रम से सम्पर्क किया था जो अनाथ और बेसहारा हो पुनः साथी की तलाश है। मैं वृद्धा चुन ली गई और मुझे वह अजनवी ले गया जिसे मेरी आवश्यकता थी।

सुबह की बेड टी वह बनाकर बड़े शौक से पेश करता। नाश्ता दोनों मिलकर तैयार करते श्वेत निग्रो था। नाश्ते में अंडे अधिक लिये जाते थे। लंच के बाद शाम की ब्लैक कॉफी मैं बनाती और शाम सैर करने किसी पार्क या शॉपिंग मॉल में बीतती। डिनर दोनों की मदद से तैयार होता।

एक शाम मैं पार्क में घूमने गई थी। वहीं मेरा बेटा और बहु भी पोते–पोतियों के साथ घूम रहे थे। बहु ने मुझे चमचमाती मंहगी गाड़ी से और किमती साड़ी में देख लिया था। उसने सम्पर्क बनाने के लिए बच्चों को चरण–स्पर्श करने भेजा। मैं अवाक जिसने कई साल मुझसे बात न की हो, अकेले छोड़ दिया वही आज फिर? शायद धनाढ्य व्यक्ति का साथ ही मजबूरी हो।

मैंने बच्चों को चूमा और प्यार किया दादी होने का आभास हुआ और वापस भेज दिया। उस बुजुर्ग ने मुझे खाली हाथ बच्चों को लौटाते देख लिया। बच्चों को बुलवाया और आशीष के साथ हजार–हजार रुपये के नोट पकड़ाये कहा दादी क्या बच्चों को ऐसे ही जाने देती है पता और फोन नम्बर बेटे द्वारा नोट कर लिये गये।

अब शुरु हुआ सिलसिला बहु और बेटे, कभी पोते–पोतियों के फोन का। जल्दी–जल्दी समाचार लिये जाने लगे। माँ! कैसी है? और फिर घर आने लगे। इतनी बड़ी हवेली और विलनासितापूर्ण जीवन देखकर शायद लालचीमन पिघल गया हो। माँ घर चलिए ना मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैंने आपको वृद्धाश्रम में छोड़ दिया। मुझे माँफ कर दिजिए।

मैंने कहा नहीं तुमने तो बहुत ही अच्छा किया वत्स! जो मुझे वहाँ छोड़ दिया और अब मैं कहीं नहीं जाना चाहूँगी तुम चाहो तो यहाँ आ–जा सकते हो। फिर बच्चे अपने पुराने दिन को याद करने लगे...।

दो नयन

दृष्टि के ये दो नयन
उज्जवल भविष्य, निर्मल नयन
काव्यों की रचना से हटकर
कोमलता से भरे नयन
दृष्टि के ये दो नयन

इन नयनों पर वारि जाऊँ
अपने प्राण लुटाती जाऊँ
पथ के सारे काँटे चुन लूँ
राह कँटीली मखमली कर दूँ
प्राणों से भी प्रिय ये नयन–2

ममता की छाँह में प्रस्फुटित होकर
पुष्प सुगंधित ये विकसित होकर
जग की सेवा में आतुर हो नयन
नयनों से प्यारे मेरे नयन–2
दृष्टि के ये दो नयन
नयनों से प्यारे मेरे नयन।

कहानी

चरित्र

डॉ० अनुज प्रभात
दीनदयाल चौक
फारबिसगंज, अररिया (बिहार)
मो०–9470023249

संजना के हाथ में डिवोर्स पेपर था। कल ही रजिस्टर्ड डाक से आया था। किसी वकील एस0 चौधरी का नाम लिखा था। बस केवल हस्ताक्षर करना था। उसने खोलकर देखा....न आरोप.... न कोई कारण। सीधी–सरल बातें– 'हम दोनों राजी–खुशी, अपनी–अपनी मर्जी से एक दूसरे से संबंध–विच्छेद करना चाहते हैं।' संजना किंकर्तव्यविमूढ़ हो उस पेपर को देखे जा रही थी।

संजना सोच रही थी...कितनी धूम–धाम से शादी हुई थी। खर्च भी अच्छा–खासा हुआ था, जबकि दहेज शून्य था। विकास रेलवे में क्लर्क था। रेलवे जैसी नौकरी में किसी का बेटा हो तो माँ–बाप आजकल लाखों की चाह रखते हैं। लेकिन यहाँ बात विकास के सिद्धांत की थी। उसने अपने–अपने मम्मी–पापा से कह रखा था–'दहेज वगैरह की बात करेंगे, तो मैं किसी भी लड़की से शादी नहीं करूँगा। बस, एक अच्छी–सी लड़की देख लीजिए।'

मम्मी–पापा के साथ विकास ने भी उसे देखा था, उससे बातें की थी। वह उसके व्यवहार, विचार और भाषा से प्रभावित हो रिश्ते के लिए हाँ कर दिया था। विकास के 'दहेज–विरोधी' सिद्धांत की बातें तब खुलीं, जब संजना के मम्मी–पापा ने लेन–देन की बातें शुरू कीं। विकास के पिता ने केवल सामाजिक प्रतिष्ठा के उद्देश्य से बारातियों के स्वागत पर विशेष बल दिया। लेकिन माँ की ममता ने नगद न देते हुए भी व्यावहारिक रूप से बहुत कुछ दिया। पिता ने बारात के स्वागत में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इधर दहेज नहीं लेने की बात सुन लोगों ने आदतन कहना शुरू कर दिया–'लड़की जो कमा रही है...।' जब लड़की कमानेवाली हो, तो दहेज का सवाल कहाँ उठता है....?...सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी का कोई हलाल करता है क्या...?

संजना 2006 के शिक्षक–नियोजन में एक पंचायत शिक्षिका बन गयी थी। नगर से 4 किलोमीटर की दूरी पर उसका स्कूल था। सरकार की विकास योजना में बिहार की सड़कों को अब गाँव–गाँव को नगर से जोड़ दिया था। लंबी दूरी अब निकट हो गयी थी। रिक्शा क्या .... पाँव–पैदल अब आसान–सा था।

संजना को जब नौकरी लगी, तो वह खुशी से फूली नहीं समायी। उसे अपने पाँव पर खड़े होने का गर्व हुआ। उसने जहाँ योगदान दिया, वह पूर्व से एक शिक्षकीय विद्यालय था। जो शिक्षक थे, वे सेवानिवृत्त होनेवाले थे। इसलिए नियोजन के अंतर्गत प्रथम ज्वाइनिंग के कारण विद्यालय का प्रभार उसे मिला। लेकिन सरकार की नीति और शिक्षा व्यवस्था में सुधार को लेकर विद्यालय में एक शिक्षक और दो शिक्षिकाएँ और आ गयीं। संजना हेड मिस बन गयी। हेड मिस बनते ही विद्यालय विकास को लेकर तीन कमरे का भवन निर्माण, शौचालय, बाउण्ड्रीवाल निर्माण आदि का कार्यभार उसी पर आ गया। ऐसे में जो समस्या आयी, वह विभाग का प्रखण्ड से जिला कार्यालय तक की भाग–दौड़ का ... और उसमें सहायक हुआ अजय।

अजय स्वभाव से हँसमुख था। वह साइन्स ग्रेजुएट था। बिहार लोक सेवा की तैयारी करते–करते शिक्षक नियोजन में आ गया। सोचा जो वर्तमान में मिल रहा है, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए और आगे के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। लेकिन विद्यालय में आने के बाद और संजना के कार्यों में सहयोग ने उसे विद्यालय का प्रमुख कार्यकर्ता–सा बना दिया। ग्रामीण समुदाय के लोग भी ज्यादातर अजय सर... अजय सर ही कहते। संजना भी विद्यालय संबंधी सभी कार्यों को लेकर उसी पर आश्रित हो गयी थी। सुविधा के रूप में अजय के पास बाईक थी, इस कारण प्रखण्ड से लेकर जिला तक के कार्यों में संजना अजय को साथ लेकर ही चलती। अब अजय संजना के घर का पारिवारिक हो गया था। विद्यालय ले जाना और घर पर छोड़ देना भी अब अजय की जवाबदेही थी।

इसी क्रम में समस्या तब उत्पन्न हुई, जब तीन कमरे का फाउंडेशन लिया जा रहा था। कुछ ग्रामीणों ने आकर हंगामा कर खड़ा कर दिया, वजह शिक्षा समिति के सचिव और अध्यक्ष के बीच का मतभेद। सचिव ने बिना अध्यक्ष से सलाह–मशविरा किये संजना और अजय के साथ ईंट, सीमेंट, छड़ आदि का एडभांस कर आये। अध्यक्ष महोदय को यह बात चुभ गयी। कारण खुद उनके एक रिश्तेदार के पास सीमेंट की एजेंसी थी। इसलिए उन्होंने ग्रामीण सदस्य को लेकर परोक्ष चाल चल दी। सदस्यों ने अड़ंगा डाल दिया.... ईंट का रंग और न0 2 की बातें होनी लगीं। 'नहीं लगेगा 2 नं0 का ईंट।' अध्यक्ष समर्थक हसन इमाम ने कहा। 'सीमेंट भी डुप्लीकेट है और छड़ भी पतला है'–फेकन मंडल ने एक और तुक्का छोड़ा।

'नहीं, नहीं...काम नहीं होगा। ...और सुनिये, इंजीनियर साहब! आप जो मिस्त्री ठेका पर लाये हैं इसराइलवा को, हम जानते हैं, यह आपका खासम–खास है। यहाँ वही काम करता है। पिछले साल गढ़िया टोला का स्कूल बना, छत पहिलके बारिस में चूने लगी।.... नहीं....नहीं, दूसरा मिस्त्री लगेगा, कमीशन वाला नहीं...।' भोला राम पूरे तैश में थे।

बेचारे सचिव लियाकत अली ... काटो तो खून नहीं। वे तो यह सोचकर चले थे, अपने गाँव–समाज का स्कूल है, ऐसे में सबसे अच्छा ईंट ए–1 का होता है और सीमेंट–छड़ जी.डी. कम्पनी देता है, इसलिए सौदा कर लिया। वैसे भी बरसात में ईंट का मिलना थोड़ा मुश्किल होता है, लेकिन शशि बाबू ने वचन दिया था कि एक भी ईंट दो नम्बर का नहीं जाएगा और फिर एडभांस को लेकर रेट भी कम लगाया था। लेकिन अब जो यहाँ माहौल दिखा, तो लियाकत अली ने अपना माथा पकड़ लिया।

इसी बीच बहुत हो–हल्ला सुनकर कुछ और लोग जमा हो गये। उन्हीं में से बैजनाथ चौधरीजी बोले–'क्यों भाई! काम क्यों बंद रहेगा...?... इस ईंट में क्या खराबी है?बारिस का समय शुरू हो गया है, पानी के कारण थोड़ा लाल दिखता है, ...लाओ जी! एक ईंट लाओ.... तोड़कर देखता है।'

तभी मुन्ना भीड़ चीरता आया और चौधरीजी को खींचता हुआ बाहर ले जाकर कहा–'चाचा! आप इस बीच में मत पड़िये। मामला ईंट–वीट का का कुछ नहीं है। मामला सब अपने–अपने मुनाफे का है।

महादेव बाबू का भाई सीताराम जी का सीमेंट एजेंसी है। वे चाहते थे, सीमेंट वहीं से लिया जाए। लियाकत चाचा ने ऐसा नहीं किया। बस महादेव बाबू समिति के साथ–साथ गाँव के कुछ लोगों को भड़का दिया है। अब अपने तो चुप हैं, पर लोग उनकी बोली बोल रहे हैं।'

'लेकिन हसन इमाम तो लियाकत का सगा भतीजा है। वह क्यों बोल रहा है...?' चौधरीजी ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा।

'कौन सगा...?आपको पता नहीं, पिछले चुनाव में लियाकत अली ने महेन्दर यादवजी को साथ दिया था, जबकि खुद उनके परिवार का हसन इमाम का भाई दिलशाद खड़ा हुआ था। आज मौका मिला है तो बदला ले रहा है।'

'हे भगवान! कहाँ की बात कहाँ आ जाती है। लोग राजनीति में तमीज–तहजीब सब भूल जाते हैं।' इतना कह चौधरीजी छाता को छड़ी की तरह सहारा लेते हुए निकल गये।

मामला सुलझाने जैसी बात नहीं थी... नहीं सुलझी। मकान का काम रुक गया। संजना के लिए यह बड़ी समस्या बन गयी... क्या करें, क्या नहीं। लियाकत अली से विचार–विमर्श कर निर्णय हुआ कि एक आवेदन तैयार कर जिला शिक्षा अधीक्षक से मिला जाए।

संजना, अजय के साथ जिला कार्यालय जाकर जिला शिक्षा अधीक्षक को समस्याओं की जानकारी दी। उन्होंने विभागीय पदाधिकारी डॉ0 बी.झा को समस्या सुलझाने की जवाबदेही सौंप दी।

डॉ0 झा कहने के लिए एक पदाधिकारी थे, किन्तु स्वभाव से विनम्र, मिलनसार और व्यवस्था के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण रखते थे। पदाधिकारी तो पदाधिकारी, शिक्षक वर्ग में भी वे काफी लोकप्रिय थे।

लियाकत अली को जब डॉ0 झा द्वारा जाँच की जानकारी मिली, तो उन्होंने स्थलीय जाँच से पूर्व मिलकर सच्चाई बताने का निर्णय लिया और संजना, अजय के साथ उनके निवास पर पहुँच गये।

डॉ0 झा ने लियाकत अली की बातें गौर से सुनी, फिर कहा–'आपलोग जाएँ, मैं स्वयं देखता हूँ कि मामला क्या है?

'कब आयेंगे सर...?' संजना अपने आपको रोक नहीं पायी।

'आप अभी इसकी चिंता छोड़िये। विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित कीजिए। ये सब बातें सेकेंड्री है।' कहा तो उन्होंने मुस्कुरा कर ही, लेकिन अनुशासन और निर्देश दोनों था।

संजना को समझते देर नहीं लगी कि यह एक पदाधिकारी की भाषा है। इसलिए प्रणाम कर वहाँ से निकल आयी। रास्ते में उसने अजय से कहा–'अजय जी! सर की भाषा तो आप समझ ही गये होंगे। विद्यालय का निरीक्षण सुनिश्चित मानिये। इसलिए बच्चों की उपस्थिति और वर्ग व्यवस्था चुस्त–दुरुस्त रखना होगा।'

वास्तव में अजय संजना से इतना घुल–मिल गया था कि विद्यालय परिवेश में बाहर मैडम न कहकर संजनाजी बुलाने लगा था।

और एक सप्ताह बाद, शनिवार की सुबह नौ बजे महादेव बाबू के साथ जब डॉ0 झा को विद्यालय की ओर आते देखा तो संजना की साँसें एक पल को थम–सी गयी। संजना ने कल्पना भी नहीं की थी, इतनी सुबह–सुबह... वह भी पैदल... कोई गाड़ी भी नहीं। उसने तुरत सभी शिक्षकों को पदाधिकारी के आने की सूचना देकर स्वयं स्वागत में बाहर निकल आयी।

आते ही वे सबसे पहले वर्ग–कक्ष में गये, बच्चों से हँसने–खेलने जैसी बातें की और बातों–बातों में अध्यक्ष महादेय से कहा–'महादेव बाबू! देखिये तो इन छोटे–छोटे, नन्हें–नन्हें फूलों को, किस तरह इस कमरें में एक–दूसरे से सटे–सटे तंग से हालात में बैठे हैं?अच्छा बताइये तो, आपके दरवाजे पर जो फूल लगे हैं, उसे एक–दूसरे से डेढ़ या दो फीट की दूरी पर क्यों लगाये हैं?'

'अरे! अलग–अलग लगायेंगे नहीं तो फूल खिलेगा कैसे?सटे–सटे रहने से तो वह बनझर–जंगली हो जाएगा।'

डॉ0 झा को 'बनझर–जंगली' शब्द सुनने के साथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' में प्रयोग आंचलिक शब्दों की याद आ गयी। सच में गाँव की भाषा में अपनी एक खुशबू होती है। वे एक बार मुस्कुरा उठे, फिर बोले–'फूलों के पौधे का विकास खुले वातावरण के बिना नहीं हो सकता, तो इन बच्चों का कैसे होगा...?इनकी पढ़ाई–लिखाई, इनका हँसना–बोलना, शिक्षकों के साथ–साथ गतिविधि में भाग लेना आदि–आदि के लिए जगह तो चाहिए और फिर एक तरह के पौधे के लिए एक ही क्यारियाँ.... क्या कहते हैं उसे गाँव की भाषा में, जो खेत को अलग–अलग बाँटते हैं....?हाँ, कोला... .कोला भी तो अलग– अलग होना चाहिए... है कि नहीं?'

'हाँ...हाँ... अवश्य, क्यों नहीं! अब और कुछ मत कहिए। मैं शर्मिन्दा हूँ, क्षमा करें। कल से भवन का काम शुरू हो जाएगा।' कहते–कहते महादेव बाबू भावुक हो उठे।

'अरे! नहीं–नहीं महादेव बाबू! ऐसा नहीं सोचिये। आप–जैसे लोग ही समाज को अच्छा बना सकते हैं। फिर यह विद्यालय तो आपका अपना है। इसमें आपके ही बच्चे पढ़ते हैं। समाज तो एक नाम है, जो एक–एक कर एक–दूसरे से जुड़कर बनता है और एक–दूसरे के सहयोग से विकास की राहें खुलती हैं।' इतना कहते–कहते डॉ0 झा महादेव बाबू को लेकर बाहर आ गये।

बाहर आते ही उन्होंने संजना को आदेश दिया कि किसी को भेजकर सचिव को बुलवा दे। उन्हें कह दे कि अपने साथ कुछ और गणमान्य लोगों को साथ लेते आवे।' और हाँ, महादेव बाबू! आप भी कुछ अपने लोगों को बुलवा लेते तो अच्छा रहता।' डॉ0 झा संजना के बाद महादेव बाबू की ओर मुड़कर कहा।

"नहीं...नहीं सर! किसी को बुलाने की जरूरत नहीं है। केवल लियाकत अली साहब को बुलवा दें, उन्हें कह दें, कल से काम शुरू हो जाना चाहिए। मेरी जहाँ जरूरत होगी, भरपूर सहयोग दूँगा। बस काम ठोस होना चाहिए। बाकी सभी को हम समझा लेंगे।" —महादेव बाबू ने कहा।

संजना ने लियाकत अली को बुलाने अजय से बाईक लेकर जाने कहा।

इसी बीच डॉ0 झा ने विद्यालय का निरीक्षण करते हुए प्रधान शिक्षिका एवं अन्य को अनिवार्य शिक्षा, उपस्थिति, स्वच्छता, मध्याह्न भोजन आदि विषयों पर चर्चा करते हुए आवश्यक निर्देश दिया।

लियाकत अली आते ही डॉ0 झा को प्रणाम किया, पर महादेव बाबू पर ध्यान नहीं दिया। डॉ0 झा को तो इसका अंदेशा था ही, इसलिए बोल उठे–'लीजिए, महादेव बाबू! अली साहब भी आ गये। तभी से आप बेचैन थे। और अली साहब! ऑफिस में तो आप महादेव बाबू की तारीफ के पुल बाँध रहे थे, कह रहे थे–बड़े ही अच्छे हैं, समाजसेवी हैं .... फिर न दुआ, न सलाम यहाँ पर!'

यद्यपि डॉ0 झा की ये बातें कल्पित थीं, पर परस्थिति विशेष में। इसलिए लियाकत अली पल भर चौंके अवश्य, फिर स्वयं को सँभालते हुए महादेव बाबू की ओर मुड़कर कहा—'नमस्कार, महादेव बाबू!' प्रत्युत्तर में महादेव बाबू उठ खड़े हुए और झुककर आदाब के साथ बैठने का आग्रह किया।

उस वक्त डॉ0 झा को लगा, जैसे एक तहजीब दूसरे से गले मिल रहे हों। यह भारत के गाँव की संस्कृति थी। डॉ0 झा ने देखा, लियाकत अली महादेव बाबू के पास बैठ गये हैं। पर वे वहाँ नहीं गये। विद्यालय के कक्ष के सामने खड़े रहे और इधर–उधर देखते ही रहे। हाँ, कान उस तरफ अवश्य थे।

उन्होंने सुना—'लियाकत भाई! स्कूल तो हमलोगों की पुरखों का दिया हुआ है। कितना मशक्कत की होगी उन लोगों ने, फिर हम–आप भी इसी में पढ़े–बढ़े हैं। इन्हीं दो कमरों में लड़ते–झगड़ते..हँसते–खेलते ... याद है, तब वे फूस के थे.... यादें ताजी हो गयी थीं।' पुनः बोले—'सुबह–सवेरे डॉ0 झा साहेब आये थे। उन्होंने बातों–बातों में सारी यादें दिला दीं। याद कीजिए, इसी में हम दोनों भी उठा–पटक किये थे और मिसर जी मास्टर साहब ने गले मिलवा दिया, फिर गले में बाँहें डाले ही हम घर गये थे।

'हाँ, महादेव! सब कुछ याद है...सब कुछ....तब न तुम महादेव बाबू थे और न मैं लियाकत अली....याद है, तुम केवल अली...अली कहते थे और मैं महदेवा..महदेवा...। कभी–कभी तो दूर से ही पुकारते हुए दौड़े आते थे... अलिया....रे अलिया ऽ ...।' लियाकत अली की आँखें छलछला आयीं।

डॉ0 झा ने देखा, महादेव बाबू खड़े होकर लियाकत अली के आँसू पोंछ रहे थे, जबकि खुद उनकी आँखों में आँसू थे।

इस दृश्य को यदि धार्मिक ठेकेदार देखते तो शायद उन्हें समझ में आ जाता .... प्यार और मोहब्बत के सामने कोई मजहब नहीं होता। डॉ0 झा स्वयं द्रवित हो उठे, किन्तु नियंत्रित हो मुस्कुराते हुए उन दोनों के पास पहुँच गये।

उन्हें पास आते देख महादेव बाबू ने खड़े होकर कहा—'डॉ0 साहब! अब आप बेफिक्र रहें। कल से काम शुरू हो जाएगा और बेहतर से बेहतर स्कूल बनेगा।'

'हाँ, सर! बेहतर से बेहतर बनेगा। इसने जब बोल दिया तो बोल दिया।' और फिर महादेव बाबू की ओर मुड़कर कहा—'यार! तुमसे बिना पूछे ही काम शुरू कर दिया, इसके लिए माफ कर दे। आगे जैसा तू कहेगा, जिससे कहेगा, सामान वहीं से आएगा।

'अरे! अब छोड़ न इन बातों को अली। हमारे घर मेहमान आये हैं, वह भी डॉ0 साहब जैसे... इनकी कुछ खातिरदारी नहीं होगी क्या...?जा, जाकर कुछ कर।' महादेव बाबू ने मानो, आदेश दिया हो।

लियाकत अली दौड़ते–हुए अजय के पास गये, कुछ रुपये देकर नाश्ता–पानी लाने कह वापस आ गये।

इन दोनों के बैठ जाने के बाद, डॉ0 झा ने कहा—'सच मानिये, आज आप दोनों से मिलकर बड़ी खुशी हुई। जिस तरह आप दोनों को एक–दूसरे का नाम पुकारते देखा, सोचता हूँ, बचपन में कितनी गहरी दोस्ती रही होगी और इसी वजह से एक झूठ मैंने भी बोला था, एक दूसरे के सामने, एक दूसरे की बड़ाई कर। बुराई कर प्रेम पैदा नहीं किया जा सकता, प्रेम के लिए प्रेम की जरूरत होती है।'

'अरे...नहीं...नहीं सर! आप नहीं जानते, दसवीं तक हम साथ–साथ ही 'ली अकादमी' में पढ़े हैं। मजाल किसी का जो एक दूसरे के खिलाफ बोल दे। दोनों में से कोई किसी की बुराई सुनने को तैयार नहीं होते थे। लेकिन ई...इलेक्शन... पार्टी–वार्टी ने....।' लियाकत अली बोलते–बोलते चुप हो गये।

'अब छोड़ न यार! जो बीत गई सो बात गई... याद नहीं बच्चन साहब की कविता! क्यों डॉक्टर साहब...?'

डॉ0 झा खुलकर हँसे। दरअसल महादेव बाबू ने जिस तरह से लियाकत अली के कंधे पर हाथ मारते हुए कहा था, वे हँसी रोक नहीं पाये।

तबतक नाश्ता लग चुका था। सबों ने साथ–साथ नाश्ता किया। इसके उपरान्त डॉ0 झा वहाँ से विदा हो लिये। वे समझ चुके थे कि समस्या का निदान हो गया है और मकान भी अब अच्छा ही बनेगा। अक्सर घने कोहरे के बाद जो धूप निकलती है, मीठी होती है।

लोगों ने देखा, भवन–निर्माण कार्य जोरों से चल रहा है। महादेव बाबू, लियाकत अली बैठे गप्पें लड़ा रहे हैं। एक बार फिर .... दोस्ती पर चर्चा गर्म...। जो भी हो स्कूल भवन अच्छी तरह बनने लगा।

इधर संजना और अजय अक्सर साथ–साथ होते। मोटर साइकिल पर पीछे बैठने के उपरांत आरंभ में संजना को जो संकोच होता था, वह अब नहीं रहा था। दोनों में अब खुलकर बातें भी होने लगी थीं। कहते हैं—'देहगंध और स्पर्श, पुरुष और नारी दोनों को प्रभावित करते हैं।'

अजय के साथ जब वह गाड़ी पर बैठी होती, ऊँची–नीची राहों पर जब गाड़ी हिचकोलें खाती, तो संजना द्वारा कंधे पकड़ लेने से उसके उन्नत अंग का स्पर्श अजय के भीतर पुरुष तत्व को मादक तरंग से तरंगित कर देता। संजना भी इस स्पर्श से अपने आपमें सिहरन–सी महसूस करती। ...लेकिन नारी, नारी होती है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता, पुरुष के सभी भावों को समझ लेना होता है, पर स्वयं के भावों को स्पष्ट नहीं होने देना... उसके भीतर की कला होती है। इसलिए जब–जब उसका स्पर्श अजय को मिलता, उसे उसके हलचल का अहसास हो जाता।

अजय अब उसके घर–परिवार के लिए अपरिचित नहीं रहा था, उसके परिवार के लोग अजय के विचार–व्यवहार से काफी खुश थे। इसलिए संजना पर उसके साथ कहीं आने–जाने में पाबंदी नहीं थी। समय पर विद्यालय ले जाना और वापस छोड़ जाना अजय के लिए रूटीन वर्क–सा था।

इस रूटीन वर्क के संदर्भ में बात चली, तो एक दिन लियाकत अली ने कहा—'संजना! अजय तुम्हारे विद्यालय का शिक्षक है, इसलिए तुम दोनों के साथ आने–जाने से तुम्हारे घरवालों को परेशानी उठानीं नहीं पड़ रही है। लेकिन अन्य महिला शिक्षक के घरवालों को समस्या–ही–समस्या है।'

'मैं समझी नहीं।...'

लियाकत अली हँस पड़े। बोले—'सरकार ने पाँच–छः हजार में दो–दो नौकर बहाल कर रखे हैं। एक वह जो काम करती है, हमारी बहू–बेटियाँ; दूसरे वे जो रोज उसे समय पर स्कूल छोड़ आते, फिर वापस ले आते। है कि नहीं...?फिर वे बोलने लगे—'अपना अरमान भी बीबी की नौकरी समय पर बजाता है। हम तो खुश हैं। इसलिए कि इधर–उधर भटकने से अच्छा है कि वह समय का ध्यान रखता है। जिस दुकान को पहले मनमाने ढंग से खोलता, बंद करता था, अब कम–से–कम तरीके से

खोलता, बंद करता तो है।'

लियाकत अली ने बताया था पहले कि अरमान उसकी बेवा बहन का लड़का है। बेवा होने के बाद लियाकत अली ने अपनी बहन को ससुराल नहीं जाने दिया। एक उसने अपनी बहन से दूसरे निकाह की बात भी की थी, लेकिन उसने अरमान को चूमते हुए निकाह से इन्कार कर दिया था। वह अरमान की परवरिश की ख्वाहिशमंद थी बस। इसलिए उन्होंने अरमान के लिए अच्छी–से–अच्छी तालीम की व्यवस्था की, लेकिन अरमान का जी पढ़ने में नहीं लगा, सो नहीं पढ़ा। कसूर थोड़ा लाड़–प्यार का था, तो थोड़ा बुरी सोहबत का। आखिर में उसके लिए एक स्टेशनरी की दुकान खुलवा दी। लेकिन वहाँ भी मनमौजीपन। इसलिए शादी की बात आई तो पढ़ी–लिखी लड़की देख शादी कर दी गयी। मन में भाव था लड़की पढ़ी–लिखी होगी तो कम–से–कम बाल–बच्चे का संस्कार तो बनेगा और पढ़ी–लिखी होने का लाभ उन्हें तुरत मिला। शिक्षक नियोजन के 50 प्रतिशत महिला आरक्षण से उसकी भी बहाली बगल के पंचायत में हो गयी। अब अरमान उसकी नौकरी को लेकर समय का पाबंद हो गया।

यह सब देख ही लियाकत अली ने बातें छेड़ दी थीं, फिर हँसते हुए यह भी कहा–'चलो अच्छा है, सरकार को तो एक सेवक मिला ही, सेवक को भी एक सेवक मिल गया मुफ्त में...।' लियाकत अली के इस अंदाज पर संजना के साथ–साथ उपस्थित अन्य शिक्षक भी हँस पड़े।

संपर्क और संसर्ग का असर जीवन में देखने को मिलता है। ऐसा ही कुछ संजना और अजय का एक साथ आना–जाना, खुलकर बातें करना आदि से हुआ। अजय संजना को चाहने लगा और संजना भी धीरे–धीरे उसके चाहत की ओर पिघलने लगी।

और फिर एक दिन... जिला कार्यालय में कुछ कार्य को लेकर पदाधिकारी से संपर्क के क्रम में विलम्ब इतना हुआ कि वापसी रात के पहरमें एन.एच. पर खतरे से खाली नहीं था। उस वक्त होटल जाने के अलावा कोई मार्ग नहीं सूझा। वे लोग होटल में ठहर गये। लेकिन होटल में बेड कम होने के कारण एक डबल बेड पर ठहरना उन दोनों की मजबूरी बन गयी।

लेकिन, इस मजबूरी ने रात के भींगते पल में चाहत को एक आँच दे डाली। तपती भट्ठी में शीशे पिघलने लगे और दो देह एक दूसरे की बाँहों में सिमट गया। न कोई बंधन... न कोई ठहराव...।

किसी ने सच ही कहा है–'बंद कमरे में यदि युवा धड़कनों को थोड़ी–सी भी गुंजाइश मिल जाए, जो आपस में घुले–मिले हों, तो दरम्याँ के फासले टूटते देर नहीं लगती, वे एक दूसरे के पूरक बन समर्पित हो जाते हैं।'

संजना और अजय के साथ ऐसा ही हुआ। आज उन्होंने भूल कर ही दी। फिर स्वीकारा भी। साथ ही इस भूल को आखरी भूल मान, भूला देना ही अच्छा समझा।

वक्त अपनी गति से चलता रहा। घर–विद्यालय सब कुछ अजय के लिए पहले जैसा ही रहा। तभी अजय को जानकारी मिली कि संजना की शादी की बात चल रही है। उसने एक साहसिक कदम उठाते हुए संजना से कहा–'क्या हम एक दूसरे से शादी नहीं कर सकते...?'

'हाँ, शादी कर सकते हैं, लेकिन...'

'लेकिन, क्या संजना...?'

'इस ओर तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। फिर माँ, पिताजी, भाई वगैरह हैं, वे सब इसके लिए तैयार नहीं होंगे।'

'तैयार नहीं होंगे...', सिर्फ इसलिए कि हमारे कॉस्ट अलग–अलग हैं?लेकिन ऐसा अब नहीं रहा है। हम दोनों जिस कॉस्ट से बिलौंग करते हैं, उसमें शादियाँ होने लगी हैं। बदलते समय के साथ बहुत बड़ा फासला नहीं रह गया है।' अजय ने तर्क दिया।

'हाँ, यह सही है, लेकिन अभी मैं कुछ नहीं कह सकती। इस विषय पर बात करेंगे।' संजना ने बात टाल दी। अजय भी खामोश हो गया। पर अजय के चेहरे पर एक उदासी थी।

उस रात संजना सो नहीं पायी। बार–बार अजय का प्रस्ताव उसके सामने आ जाता। लेकिन बहुत सोचने के बाद उसे लगा कि प्रस्ताव अच्छा ही है। पर भय तो उसे अपने बड़े भाई से था। दरअसल उसका भाई बेरोजगार था। उसके पिताजी एक प्राइवेट फॉर्म में काम करते थे, साथ–साथ इन्श्योरेंस का भी कुछ काम था। इससे अच्छी आय हो जाती थी। लेकिन उसका भाई जिस तरह से जीना चाहता था, वैसा उस आय से संभव नहीं था। इसलिए उसने अपनी और संजना की नौकरी के लिए काफी भाग–दौड़ की। इस भाग–दौड़ में संजना को तो नौकरी मिल गयी, पर उसे नहीं मिली। नौकरी नहीं मिलने की वजह से कभी–कभी फ्रस्टेशन का शिकारवश घर में कोहराम मचा देता था। अब वह संजना की कमाई पर अपना अधिकार समझता। वह कहता–'यदि दौड़–दौड़कर अप्लाई नहीं करवाता, कांसेलिंग के लिए जगह–जगह नहीं ले जाता, तो क्या उसे नौकरी मिल जाती...?' अपने इस उपकार के एवज में वह संजना का सारा वेतना उठा लेता। उसके इस व्यवहार से पिताजी भी परेशान रहते। उसके पिता का इन्श्योरेंस कार्य को लेकर अच्छे–अच्छे लोगों से परिचय था। उनकी एक सामाजिक प्रतिष्ठा भी थी। वे नहीं चाहते थे कि घर की बातें बाहर आये। पर होनी को कौन टाल सकता है। एक दिन वह अपने पिता से बहस के दौरान इतना क्रोधित हो गया कि हाथापाई कर बैठा। हो–हंगामा सुनकर पास–पड़ोस के लोग जब जमा हो गये, तो वह शांत हो गया। उस दिन उसके पिता को काफी चोटें आयीं।

पिताजी कर भी क्या सकते थे। इकलौता बेटा था वह। माँ की कमजोरी थी। माँ की वजह से वे उसकी जिद्द के आगे झुक जाते। संजना के रिश्ते की बात अपने पर न जाने क्यों इस बार उसने विरोध नहीं किया।

संजना के सामने समस्या थी अजय के प्रस्ताव को घरवाले के सामने रखे, तो कैसे रखे...?दो दिन पूर्व ही सभी लड़का देख आये थे। लड़का रंग में थोड़ा श्यामला था, पर व्यवहार कुशल था। वह रेलवे में बुकिंग क्लर्क था। लगभग बात पक्की थी। केवल संजना को देखने की बात शेष रह गयी थी और इसके लिए वह अगले दो दिन में आनेवाला था।

संजना का मन भँवर में फँसे उत्प्लावित वस्तु–सा हो गया था। कोई भी निर्णय उसके लिए सहज नहीं था। उसके विचार से अजय एक अच्छा लड़का था। वह उसे खुश रख सकता था। फिर दोनों ही नौकरी में थे। इस वजह से जीवन में कोई कठिनाई हो, ऐसा उसे नहीं दीख रहा था।... अंततः उसने माँ से बात करने की सोची।

और संजना की बात सुनते ही माँ आग–बबूला हो उठी। ....'लोग सही कह रहे थे.... ई मास्टरवा के साथ छौड़ी का कोई चक्कर–वक्कर है। नहीं तो रात–दिन अपना काम–धाम छोड़ के मोटर साइकिल पर क्यों घुमाते फिरता है...?अरे! कब से चल रहा है चक्कर बता...?तेरे पिताजी और भइया सुनेंगे तो काट डालेंगे।'

'कोई चक्कर–वक्कर नहीं है माँ! यह तो अजय ने आज ही मेरे सामने प्रस्ताव रखा। मैं तो तुमसे यह जानना चाहती हूँ कि इसमें बुराई क्या है.. .?फिर अजय से शादी होती है, तो मैं तुम्हारे आस–पास ही रहूँगी। जब चाहे यहाँ आ–जा सकूँगी...., इससे तुम्हें खुशी नहीं होगी क्या...?'

'ऐसी खुशी भाड़ में जाए। कहाँ वह रेलवे में काम करनेवाला लड़का.... और कहाँ ई चार–पाँच हजार का मास्टर?लोग तो बैंक, रेलवे या अन्य सरकारी विभागवाले लड़के खोज–खोज के थक जाते हैं...मिलता नहीं है और मिलता भी है, तो बड़ा–बड़ा दहेज माँगते हैं। यहाँ मिल रहा है, तो तमाशा खड़ा करके हमारी बदनामी मत कर।...जरा सोच! रेलवे की नौकरी वाला लड़का मिलेगा, तो तुम कितनी खुश रहोगी। किसी चीज की कमी नहीं होगी। घूमना–फिरना सब मुफ्त में होगा। और तो और समाज में हमारी कितनी इज्जत बढ़ेगी... यह सब तो सोच। फिर वे लोग यह भी कह रहे थे कि तेरे भाई को कोई–न–कोई काम दिलवा देंगे।'

'अच्छा! तभी भाई इस रिश्ते को स्वीकार कर रहे हैं। पहले तो शादी के नाम पर कभी कोई बात नहीं करते थे, ...क्यों?' संजना की आँखों में क्रोध था।

'अरे! नहीं... नहीं, यह बात नहीं है। वह चाहता था, पहले घर–द्वार अच्छी तरह बन जाये, फिर कुछ पैसा हो जाए... फिर धूमधाम से करेंगे शादी। आखिर दस लोग आयेंगे–जायेंगे, तो घर–द्वार नहीं देखेंगे क्या?वही अब घर में सब कुछ हो गया है, तो तैयार हो गया है। इसलिए आज के बाद ऐसी बातें जुवान पर मत लाना।'

एक बार उसकी माँ ठहर गयी, फिर संयम के साथ समझाने की मुद्रा में बोली–'देख संजना! और सोच भी, लोग सुनेंगे तो हवा की बातें सच मान लेंगे। कितनी बड़ी बदनामी होगी। तुम्हारे पापा ने इस रिश्ते की बात कइयों को बतला दिया है, और तो और उनके कई रिश्तेदार भी यहाँ हैं, जिनकी वजह से यह रिश्ता तय हो पाया है। इसलिए मुँह बंद कर चुपचाप शादी कर ले।'

'और मेरी नौकरी का क्या होगा?वह तो चाहेगा, मैं नौकरी छोड़ दूँ। कोई अपने पैर पर अपने से कुल्हाड़ी क्यों मारे? मैं नौकरी नहीं छोड़नेवाली। यदि यह मंजूर हो तो शादी होगी...नहीं तो नहीं। कान खोलकर सुन लो माँ।' संजना ने कठोरता से अपनी बात बता दी।

' अब बात समझ में आ रही है। तू नौकरी नहीं छोड़ना चाहती है, है न?अरे! तेरे पिताजी भी ये सब बातें पहले ही कर चुके हैं। लड़के ने कहा है, वह अपना ट्रांसफर इसी तरफ करवा लेगा और छुट्टी–छुट्टी में दोनों का आना–जाना होता रहेगा। तू चिन्ता मत कर, खुशी–खुशी शादी की सोच। बेटी! तेरे पिताजी के कई बड़े अरमान थे कि तुझे कोई अच्छा नौकरीवाला लड़का मिल जाए। आज ईश्वर ने दिया है, तो ठुकराने की बात मत कर बच्ची। वर्तमान नहीं, भविष्य की सोच और अपने पिता के बारे में भी सोच। यदि जग–हँसाई हुई, तो जीते जी मर जायँगे वे'.....कहते–कहते संजना की माँ रो पड़ी।

संजना को लगा, माँ ठीक ही कह रही है। अजय कोई बड़े घर का लड़का तो है नहीं, उसका भी मध्यम वर्ग का परिवार है। माता–पिता के साथ एक बहन भी है शादी के लिए। जीया तो आसानी के साथ जा सकता है, मगर ऐशोआराम से नहीं।बस वैसे ही जैसे मध्यम वर्गीय जीते हैं। लेकिन जो भूल उससे हुई, चारित्रिक भूल... नारी की लज्जा की भूल.... शायद उसी भूल ने हम दोनों के बीच प्यार पैदा किया है। क्या यह प्यार है या भूल सुधारने के लिए समझौता...?

संजना को लगा, यह समझौता ही है। शायद अजय भी भीतर–भीतर अपनी भूल सुधारना चाहता हो। नहीं..नहीं...यह मेरी दूसरी भूल होगी। परिवार की मान–मर्यादा का हनन होगा और लोग जिससे अनजान हैं, केवल शक कर रहे हैं, वह यकीन में बदल जाएगा। चरित्र, चरित्र नहीं रह जाएगा। माँ ठीक ही कह रही है, इसे एक हादशा समझ भूला देना ही बेहतर है और संजना अपने आपको दृढ़ता में बाँध, शादी करने का निर्णय ले लिया। उसने स्कूल जाने के क्रम में अजय से बात की और उसे भी भूल जाने को कहा। उसने कहा, 'हादशा हो जाता है और उसे भूलना भी पड़ता है। वह इसके लिए गिल्टी फिल मत करें। बस, उसके साथ सहयोगी दोस्त बनकर रहे।'

अजय कुछ भी बोल नहीं पाया। बस खामोशी से सुनता रहा था संजना की बातें। वह समझ चुका था कि उसका प्रेम संजना की भौतिकवादी में खो चुका है।

कुछ दिनों के बाद संजना की सगाई और फिर शादी भी हो गयी। संजना अवकाश लेकर अपने पति के साथ हनीमून पर कुल्लु–मनाली भी चली गयी। वापसी पर स्कूल आयी तो संजना पहले जैसी संजना नहीं थी। उसके जीवन में बदलाव आ गया था। उसने अब विद्यालय जाने के लिए रिक्शा किराये पर ले रखा था।

संजना ने एक प्रकार से अपने जीवन की दिशा बदल दी थी। लेकिन विद्यालय का कार्य कुछ इस तरह था कि अजय का सहयोग लेना ही पड़ता था। वह सहयोग विद्यालय हित में एक सहयोगी का होता। अजय संजना के कहने पर सब कुछ भूलने तो लगा था, किन्तु पूरी तरह भूला नहीं पाया था। वह भावनात्मक रूप से अब भी जुड़ा था। परन्तु संजना का व्यवहार, संकोच रहित होते हुए भी कठोर शादी–शुदा सा था। उसने कभी भी अजय को कुछ बोलने का मौका नहीं दिया।

धीरे–धीरे वक्त गुजरता गया। संजना का पति विकास का आना–जाना बस केवल छुट्टियों में होता। लेकिन जब भी आता, अपनी परेशानी बताता। उसने बहुत कोशिश की कि उसका ट्रांसफर हो जाए, लेकिन एक जोन से दूसरे जोन में ट्रांसफर नहीं हो पाया। जोनल प्रोब्लेम स्थानांतरण में सबसे बड़ी बाधा थी और उसकी नौकरी भी नई–नई थी। इसलिए अब कहने लगा था–'मेरी मानो तो नौकरी छोड़ दो। इन पाँच–छः हजार के चक्कर में अपनी गृहस्थी बर्बाद हो जाएगी। आज की बात छोड़ो,

कल बच्चे होंगे, उनकी पढ़ाई–लखाई आदि बहुत सारी समस्याएँ आएँगी।'

संजना विकास की बातों पर ध्यान नहीं देती। वह इधर–उधर की बातें कर टाल जाती। इस बीच एक घटना और घट गयी। उसके भाई की शादी हो गयी। उसकी भाभी आ गयी। भाभी के आने पर घर का माहौल पहले जैसा नहीं रहा। संजना का पहले जो रुतवा था, उसमें भी बदलाव आ गया। अब उसकी नहीं, उसकी भाभी की बातें अधिक मानी जाती। माता–पिता का ध्यान भी उसकी ओर अधिक होता, और क्यों न हो, बड़े घर की बेटी जो ठहरी। इससे संजना को कभी–कभी तकलीफ भी होती, किन्तु उस तकलीफ के बावजूद भी वह अपने वेतन का अधिकांश भाग अपने इस परिवार पर खर्च करती। इतना ही नहीं, जब भी उसके भाई को पैसे की जरूरत होती, चेक काटकर दे देती।

विकास को उसका यह अंध प्रेम पसंद नहीं था। वह समझाता, यदि तुम कमाती हो तो कुछ अपने लिए भी बचत की सोचो। मैं चाहता हूँ, गाँव में अपना एक अच्छा–सा मकान बन जाए। उसमें थोड़ा तुम भी सहयोग कर दो। जबतक तुम्हारी शादी नहीं हुई थी, सब कुछ ठीक था। लेकिन अब शादी हो चुकी है, तो हमारे घर–परिवार के प्रति भी तुम्हारी कुछ जवाबदेही बनती है।

विकास की इन बातों से संजना को ऐसा लगने लगा, जैसे वह उनके पैसे को ज्यादा अहमियत देने लगा है। नौकरी छोड़ने की बात केवल दिखाने के लिए कर रहा है।

संजना के इस सोच का परिणाम यह हुआ कि विकास के प्रति उसके प्रेम में अंतर आने लगा। उसके समर्पण भाव में भी कमी आने लगी। अब जब भी विकास आता, वह अपने कामों में मशगूल रहती। सच तो यह था कि अपने पाँव पर खड़ा होने का अहम् उसके भीतर समाने लगा था। जब भी उसकी भाभी उसे समझाने की मुद्रा में कहती–'संजना बेबी, एक विवाहित के लिए उसके पति से बढ़कर उसका कोई नहीं होता। विकासजी बहुत अच्छे इन्सान हैं। यदि नौकरी छोड़ने को कहते हैं, तो छोड़ दीजिए।

संजना को उसकी बातें अच्छी नहीं लगती। वह उसका गलत अर्थ लगा बैठती। उसे लगता उसी भाभी को उसका यहाँ रहना पसंद नहीं। इसलिए एक दिन गुस्से में कह दिया–'भाभीजी! यदि आप नहीं चाहती हम यहाँ रहें, तो मैं भाड़े का मकान ढूँढ़ लूँगी।' भाभी चुप हो गयी और उसके बाद कुछ बोलना उसे उचित नहीं लगा।

परिणाम हुआ कि विकास ने पुनः जब उससे नौकरी छोड़ने की बात कही, तो वह गुस्से में आ गयी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'वह किसी भी स्थिति में नौकरी नहीं छोड़ेगी। उसे उसके साथ रहना है तो रहे, नहीं तो नहीं।'

विकास संजना की बातों को सुन हतप्रभ हो गया। उसने सोचा अभी वह क्रोध में है, इसलिए चुप रहना ही बेहतर होगा। पर क्रोध, क्रोध नहीं था। विकास जितना उसे समझाने की कोशिश करता, संजना उतना ही सख्त रवैया अपनाती। अब तो वह विकास के बिस्तर पर होकर भी नहीं रहती।

विकास के लिए संजना का यह व्यवहार असह्य था। इसलिए क्रोधवश उसने भी एक दिन कह दिया, 'यदि तुम ऐसा ही करती रहोगी तो हम तलाक के लिए विवश हो जाएँगे।'

'तो फिर तलाक ही दे दीजिए। मैं नहीं चाहती कि मुझे, मेरी जिंदगी में किसी के आगे हाथ फैलाना पड़े। नौकरी मेरी जिंदगी है और किसी भी हालत में इसे नहीं छोड़ूँगी।'

'क्या यह तुम्हारा आखिरी फैसला है?'

'हाँ, आखिरी फैसला। ...नौकरी नहीं छोड़ूँगी, तो नहीं छोड़ूँगी और हाँ, यह मत समझिएगा कि इस घर की चौखट पर मैं पड़ी रहूँगी। यहाँ से अलग अकेली जी भी लूँगी।'

विकास के पास अब कोई रास्ता नहीं बचा था। वह उसी समय अपना बैग उठाया और वहाँ से निकल आया। यद्यपि घरवालों ने उसे बहुत रोकने की कोशिश की....सास, श्वसुर, भाभी–सभी ने, लेकिन वह एक स्वाभिमानी पुरुष था।

फिर एक महीने बाद... एक डिवोर्स पेपर आया। यह डिवोर्स पेपर संजना के लिए यक्ष के प्रश्न–सा था। इस प्रश्न के उत्तर पर ही उसका जीवन निर्भर था। या तो इस कागज के टुकड़े पर साइन कर स्वयं को आजाद कर ले या फिर...।

या फिर...के पूर्व, आजाद होने के बाद उसके सामने एक विकल्प मात्र था–'अजय'। अजय अब भी उसे भीतर–भीतर चाहता था, यह वह जानती थी। वह उसके साथ खुश तो रह सकती थी, लेकिन जीवन में कोई नया रंग भरनेवाला नहीं था। सोसल एटीट्यूट.... उसके माता–पिता का नाम और.... और उसके चरित्र पर उठते सवाल?अब वह एक विवाहिता थी। ऐसा नहीं था कि उसका पति... एक अच्छा पति नहीं था। वह इतना अच्छा था कि लोगों ने जब उसके कान भरे तो वह स्वयं स्कूल जाकर परिचय बढ़ा लिया। परिचय की प्रगाढ़ता में उसने एक दिन हँसकर कहा था, 'कॉलिंग या ब्वाय फ्रेंड हैं आप'...।' और संजना ने जब आँखें तरेरी तो फिर कहा, 'सॉरी बाबा, सॉरी...रिश्ते में इतना तो मजाक का हक बनता है।'

इसके बाद कोई सवाल नहीं। यह था विकास का चरित्र। मेरा... एक नारी का....?संजना की आँखों में आँसू आ गये। वह फफक–फफककर रो पड़ी।

वह बहुत देर तक रोती रही। जब मन शांत हुआ तो उसके चेहरे पर संतोष था, ... एक दृढ़ता थी। उसने अपनी आँखों से बहते आँसू को पोंछ, उस डिवोर्स पेपर को टुकड़े–टुकड़े कर, उसे वहीं छोड़.... अपनी अटैची उठा ली...जिंदगी को टुकड़े होने से बचाने के लिए....।

कहानी

दस बरस पहले

हिमांशु मोहन जायसवाल
ग्राम व पोस्ट – निगोही
जिला–शाहजहांपुर (उ० प्र०)

मैं एक रुढ़िवादी समाज में रहने वाले एक ऐसे परिवार से हूँ जहाँ पर समाज के रीति–रिवाज़ खास मायने रखते हैं। यूँ तो मैंने कभी उन्हें तबज्जो नहीं दी... क्यांकि ये बात अक्सर मुझे दकियानूसी लगा करती है... लगे भी क्यूँ ना, ये कौन सी बात है लड़के की शादी में लड़की वाले जूते चुराते हैं... और फिर उन जूतों के बदले नेग बसूलते हैं। नेग मतलब... उस रस्म के नाम पर वसूल किये गए कड़क–कड़क नोट। अरे जब रुपये ही लेने थे तो मांग लेते, जूते चुराने की क्या जरुरत... और मान लो अगर जूते चोरी हो भी गये तो दूसरे पहन लो। रुपये देकर वही जूते वापस लेने का कौन सा ख्याल।

जब तक माँ थी ऐसी बाते मैं आँख बंद करके मान लेता था, हाँ कभी–कभी उनसे बिगड़ जरुर पड़ता था। फिर बैठकर समझाने की कोशिश भी करता था... कि इन सब बातो से समय की बर्बादी के अलावा और कुछ नहीं होता... पर माँ भी अपने प्यार, दुलार और भावुक विचारों के ऐसी तीर छोड़ती कि बस दिल करता कि मान लो उनकी बात। ... उन्होंने भी तो न जाने कितनी रातें हम पर न्योछावर कर दी... ना जाने कितने दिन हमारे अरमानों की लौ को जलाये रखने के लिए बुझा दिए। पर आज अब वो नहीं हैं... तो फिर से उन दकियानूसी रीति–रिवाजों को मानने को जी ही नहीं करता।

फ्लैट के एक कमरे में लैपटॉप को गोद में लिए बैठकर कभी–कभी उनकी गोद की याद आ जाती है। कभी–कभी लगता है कि यूँ... पूरा दिन ऑफिस के एक कमने में वहां के डेस्कटॉप के आगे निकाल देना और ना जाने कितनी शामें और कितनी राते उस फ्लैट के एक कमरे में... कैफ्फे के अनगिनत प्यालों... और वही लैपटॉप की स्क्रीन के सामने गुजार देना माँ ने तो कभी नहीं सिखाया था। फिर आज ऐसी जिंदगी क्यूँ जी रहा हूँ मैं... जहाँ बस भागादौड़ी और पूहमपोह मची रहती हो... जहाँ किसी और से बात करने का ज़रा सा भी वक़्त नहीं हो। कभी–कभी तो ऐसा लगने लगता है कि... मैं कोई उधार की ज़िन्दगी जी रहा हूँ। परन्तु ये ऑफिस... ये नौकरी... ये खालीपन... सभी कुछ मैंने खुद ही तो चुना था।

इंजिनियरिंग की पढ़ाई के बीच ना जाने माँ कितने दफा घर बुलाती थी... बोलती थी कम से कम गर्मी की छुट्टियों में तो घर आ जाया कर... पर मैं उस समय आगे और आगे की महत्वाकांक्षा को आँखों में लिए बहुत कुछ पीछे भी छोड़ता चला जा रहा था। ना जाने कब बचपन बिताकर उम्र की देहलीज़ लांघने की कगार पे लाकर खड़ा कर दी थी... इस बेरहम जिंदगी ने। आज जब सब कुछ फिर से सोंचता हूँ तो गुस्सा आता है... खुद पर... बहुत खीझ सी उठती है। सबसे ज्यादा रंज तब होता है जब वीणा की याद... उसका किया हुआ लम्बा इंतज़ार बनकर आती है... और अंतर्मन को झकझोर जाती है।

बात उस समय की है जब मैं 20 साल का था। बारहवीं की परीक्षा अच्छे अंकों से पास करने पश्चात एक वर्ष कोटा, राजस्थान से आई.आई.टी की तैयारी भी की थी। मेरा छोटा भाई भी उसी की तैयारी कर रहा था, मेरी एक छोटी बहन भी है जिसे प्यार से मैं छुटकी कहता हूँ वो काफी छोटी थी उस समय। मेरे पापा कोई बड़े आदमी नहीं थे लेकिन सभी उनकी इज्ज़त करते थे। वो बहुत ही शालीन स्वाभाव के है और आज भी उनका स्वभाव वैसा ही है। पहले जब वो माँ से लड़ाई करते तो उन्हें मनाते नहीं थे... माँ को ही आना पड़ता था उन्हें मनाने... पुचकारकर खाना उन्हें ही खिलाना पड़ता था... और आज वो नाराज़ हो भी जाते हैं... तो खाना के लिए मना नहीं करते ना ही कहीं दर निकल जाते हैं... बस चुपचाप से परोसा हुआ खाना गुस्से को ऐसे पीस कर खाते हैं जैसे खिचड़ी के संग पुदीने की चटनी। उस समय माँ की कहीं एक–एक बात मुझे ऐसे याद आ जाती है जैसे वो आज भी सामने से यही सब कह रही हो।

जब मैं आई.आई.टी की परीक्षा देकर घर आया था। गर्मी के दिन थे और उ0 प्र0 में उन दिनों गर्मी का अपना प्रकोप रहता है। मैंने और मेरे छोटे भाई ने नानी के घर जाने का प्लान बनालिया क्योंकि वहां के बाग़ बगीचों के स्मरण से ही एक भीनी सी खुशबू सांसो में तैर जाती। पता नहीं क्यों गाँव से हमेशा ही मेरा खिंचाव रहा है। आज की सदी में जब बच्चे किसी कैफेटेरिया में जाना पसंद करते हैं, किसी मॉल में घूमना पसंद करते हैं उस समय मुझे वही खुशी गाँव की आवोहवा में मिलती थी। वहां की खुशबू में एक अलग एहसास होता था। लेकिन रिज़ल्ट आने की चिंता में कहीं भी नहीं जा पाया।

उन दिनों माँ ने सिलाई–कढ़ाई का काम घर पर ही शुरु कर दिया था कुछ ज्यादा बड़ा नहीं बस मोहल्ले की लड़कियां माँ से ये सब सीखने आती थी। पड़ोस में ही एक और परिवार रहता था बिलकुल मेरे परिवार जैसा, मिस्टर शर्मा और उनकी मिसेज। उन्हें मैं चाचा–चाची कहता था। उनकी एक ही लड़की थी उसका नाम था–वीणा। वो कला स्नातक प्रथम वर्ष की छात्रा थी। वो भी रोज सिलाई–कढ़ाई सीखने आती थी।

यूँ तो मैं हमेशा बाहर ही रहा हूँ, सात साल नवोदय विद्यालय में और फिर एक वर्ष कोटा में...। मोहल्ले में मेरी जान पहचान ज्यादा किसी से नहीं थी और न ही मैं किसी से ज्यादा बोलता था। मेरी माँ की पहली छात्रा वो ही थी। देखने में वो बहुत सुन्दर थी और स्वाभाव की उतनी ही सरल थी। उसमें ना जाने क्या था... कि मन में उसकी सूरत इस कदर बस गयी थी कि उसके सिवा कुछ और सूझता ही न था। मैं तो ये भी भूल गया था कि एग्जाम का रिजल्ट भी आने वाला है।

उसकी आवाज़ से ही हृदय की धड़कन तीव्र हो उठती, साँसे और जोर से चलने लगती। उसकी हंसी से सारे वातावरण में एक शांत, सुरीला मधुर संगीत बज उठता था। पर उसके सामने होते ही ना जाने कैसे मेरी जुबां लड़खड़ाने लगती थी मैं उससे कभी आँख तक नहीं मिला पाता था।

वो जब भी आती थी मैं अपने कमरे में चला जाता था और वही कोई काम करने लगता था और जानबूझकर ऐसी जगह बैठता था जहाँ से वो तो मुझे दीख पड़ती थी पर वो मुझे नहीं देख पाती थी। कभी उससे लम्बी बातचीत भी नहीं हुई पर कभी–कभी स्कूल, पढ़ाई, परीक्षा इत्यादि की बाते हो जाती थी। तुम्हारे स्कूल में क्या–क्या होता है? परीक्षा कब है? बस...

मुझे उसको देखना बहुत अच्छा लगता था, परन्तु क्या करता... मैं हमेशा से ही अंतर्मुखी स्वाभाव का रहा हूँ... किसी से अपने मन की बात खुल कर कभी नहीं कह पाता। एक दिन की बात है। मैं रोज की तरह बाइक से अपने दोस्तों से मिलकर लौट रहा था तो सामने दूर से ही सड़क पर मुझे वीणा दीख पड़ी, और साथ में बेजान सी खड़ी उसकी स्कूटी... मैंने पास जाकर अपनी बाइक रोक दी।

मैंने पूछा क्या हुआ? वो रोना सा मुह बनाकर बोली–

''पता नहीं शुभम् स्कूटी बंद हो गयी अचानक और अब स्टार्ट ही नहीं हो रही जब की तेल की टंकी फुल है''। मैंने बाइक किनारे पे खड़ी की और स्कूटी स्टार्ट करने की नाकाम कोशिश की।

मैंने कहा– ''चलो मैं तुम्हें घर तक छोड़ देता हूँ पास में ही मेरे दोस्त का घर है स्कूटी वहां खड़ी कर देता हूँ।'' स्कूटी को दोस्त के यहाँ खड़ी करने के बाद मैंने उसे बाइक पे बैठने को कहा, पहले तो वो थोड़ा झिझकी फिर मुस्कुराते हुए बैठ गयी।

मुझे तो यकीं ही नहीं हो रहा था कि एक परी बाइक पर मेरे साथ बैठी है मेरा मन ख्वाब का वो परिंदा बन गया था जिसे उसके ख्वाबों में ही सारा आसमान मिल गया हो। मन की खुशी सातवें आसमान पर थी। पर रास्ते में हम कुछ नहीं बोले। एक दो बार ध्यान न होने की वजह से बाइक थोड़ा लड़खड़ा भी गयी, उसने मुझे कस के पकड़ लिया और बोली शुभम संभल के कोई जल्दी नहीं है आराम से चलो। कुछ ही देर में हम घर पहुँच गए थे, जाते हुए उसने मुस्कुराते हुए धन्यवाद दिया।

अगली सुबह स्कूटी ठीक करवा दी और चाची के घर दे आया। मैं वीणा के घर जाने का कोई भी मौका छोड़ना नहीं चाहता था। चाची ने बहुत धन्यवाद दिया और आशीर्वाद भी पर जिस कारण मैं वहां गया वो ही मुझे नहीं दिखी। मैंने चाची से पूछा– ''चाची वीणा कहाँ है?'' चाची ने कहा– अपने कमरे में है न जाने आज सुबह से ही किताबें चारों तरफ लगाये बैठी है। मैं उसके कमरे की तरफ गया, वो कोई डायरी लिख रही थी किसी की आहट पाकर झट से उसने डायरी को पीछे छुपा लिया। मैं उसे देखकर मुस्कुरा दिया और वो भी। मैंने उसे कहा– ''तुम्हारी स्कूटी ठीक हो गया है बस थोड़ा कचरा अटक गया था अब ठीक है।'' उसने बोला– ''थैंक्स शुभम, आओ बैठो में चाय बनाती हूँ तुम्हारे लिए।'' उस दिन हमने काफी देर बातें की पर बातों में सारी बातें उसी की थी मुझे कुछ सूझता ही नहीं था कि क्या कहूँ।

ऐसे ही एक महीना गुजर गया। आज मेरा रिजल्ट आने वाला था। सुबह से रिजल्ट का इंतज़ार कर रहा था। माँ, बाप सभी किसी रिश्तेदार की शादी में गए हुए थे, जाना जरुरी था पर मैं नहीं गया... मेरा रिजल्ट जो आने वाला था...। वैसे भी काफी परेशान था, मुझे पता था आई.आई.टी. में कम चांस था, पर ए.आई.ई.ई.ई. की परीक्षा अच्छी हुई थी...।

आज भी रोज की तरह ही वीणा मेरे घर आई। उसे शायद पता नहीं था माँ घर पे नहीं है... उसने मुझसे पूछा शुभम चाची कहाँ है? मैंने जबाब दिया– माँ शादी में गयी है...। इतना कहकर मैंने सोचा वो चली जाएगी... मैं आँखें नीचे किया स्टाचू बना खड़ा था... पर वो नहीं गयी... सामने सोफे पे बैठ गयी।

मेरा दिल जोरों से धड़कने लगा।

मैंने हकलाते हुए कहा... ब.ब.बैठो म.मै तुम्हारे लिए पानी लाता हूँ...।

उसने पानी पिया और बोली– ''शुभम मुझे लगता है कि तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो...?'' मेरे पैरों के नीचे से तो जमीन ही खिसक गयी।

मैंने हकलाते हुए कहा... न..नहीं..तो..कु... कुछ भी तो नहीं।

उसने फिर से अपनी मीठी आवाज में कहा– 'मैं कई दिनों से महसूस कर रही हूँ कि तुम कुछ कहना चाहते हो, अगर ऐसा है तो कहो मैं बुरा नहीं मानूंगी...।

मैं चुप खड़ा रहा... गले से एक भी अल्फ़ाज़ नहीं निकल पा रहा था।

उसने फिर कहा... 'मुझे पता है शुभम तुम कुछ नहीं कह पाओगे, मैं तुम्हें बचपन से जानती हूँ पर मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ। मैं तुम्हें पसंद करती हूँ।

मेरी तो जैसे खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा... मैंने पहली बार उससे नजर मिलाने की हिम्मत जुटा पायी।

कुछ देर उसे यूँ ही देखता रहा फिर बोला– 'वीणा मैं सच में तुम से बहुत ज्यादा प्यार करता हूँ, ना जाने क्यूँ तुम्हें देखकर मेरा मन पवित्र हो जाता है जैसे तुम्हारी पूजा करने का मन करता है और फिर ये कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया...। उसकी आँखों से आंसू की बूंदे छलछला आयी। शायद उसे विश्वास नहीं हो पा रहा था कि जिस प्यार की तलाश में लोग हमेशा जिंदगी भर इधर–उधर भटकते रहते है वो उसे इतनी जल्दी मिल जायेगा।

उसने डबडबायी आँखों से पूछा– ''शुभम, क्या तुम मुझे हमेशा ही इसी तरह प्यार करोगे?''

मैंने उसकी भीगी आँखों को पोछते हुए कहा... हाँ, और एक भी आंसू की बूंद तुम्हारी आँखों में नहीं आने दूँगा। हम दोनों कस के एक दूसरे के गले लग गए। बाहर किसी की आहट पाकर दोनों अलग हो

गये की कहीं कोई ऐसे हमको देख न ले।

मैंने कहा– 'आज मेरा रिजल्ट आने वाला है, वीणा और मुझे बहुत चिंता हो रही है पता नहीं कौन सा कॉलेज मिलेगा।

तुम चिंता मत करो शुभम जो भी मिलेगा अच्छा ही होगा क्योंकि आज का दिन सबसे अच्छा है– उसने मुस्कुराते हुए कहकर मेरा हाथ अपने हाथो में ले लिया और उसे हलके से सहलाने लगी जैसे अपना सारा प्यार आज ही मुझ पर उड़ेल देगी।

फिर हम दोनों टेबलेट पे रिजल्ट देखने बैठ गए, सुबह के दस बज चुके थे और समय भी गया था भविष्य के निर्धारित होने का। मैंने एन.आई.टी. की काउन्सलिंग अच्छे से की थी और भगवान से प्रार्थना कर रहा था कि काश! कोई अच्छी सी एन.आई.टी. मिल जाये...। वो भी आँखें बंद किये प्रार्थना कर रही थी। मैंने अपना रोल नंबर और पासवर्ड डाला तो खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा, मुझे एन.आई.टी. अगरतला में कम्प्यूटर साइंस में बी.टेक. का कोर्स मिला था। वो भी खुशी से झूम उठी और उसकी आँखों में आंसू आ गये।

उसने मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़े और कहा– 'वादा करो वहां अपना ख्याल रखोगे और मुझे कभी नहीं भूलोगे।'' मैंने आगे बढ़ के उसके दोनों हाथों को चूम लिया, फिर हम दोनों देर तक बातें करते रहे। आज जीवन में पहली बार लग रहा था कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ, आज मुझे कितना कुछ मिल गया था।

अगले दिन माँ, पापा सभी घर लौट आये थे। सभी रिजल्ट से खुश थे और जगह–जगह मेरे कॉलेज मिलने की खबर बता रहे थे। दोस्तों रिश्तेदारों से फोन आने शुरु हो गये थे वो दिन किसी जश्न से कम नहीं था। मुझे दो दिन बाद कॉलेज के लिए निकलना था, फ्लाइट की टिकेट भी कटवा ली थी। पूरा दिन पैकिंग में ही बीत गया। जाने से एक दिन पहले घर में छोटी सी पार्टी रखी गयी। वीणा और उसके मम्मी–पापा भी आने वाले थे पर वो नहीं आ पाए मैं भी वीणा का इंतजार करता रह गया। फोन किया तो पता चला वीणा को बहुत तेज बुखार है। मैं रात भर सो नहीं सका बस तारों को एकटक लगाये देखता रहा और सोचता रहा कैसे सारे तारे जल्दी से गायब हो जाये पर रात है कि जाने का नाम ही नहीं ले रही थी। मुझे सुबह ही निकलना भी था, तारों को घूरते–घूरते न जाने कब आँख लग गयी हुझे पता नहीं चला। सुबह जब उठा तो फटाफट नहा धोकर वीणा के घर पहुँच गया। चाची ने बैठाया और कॉलेज मिलने की बधाई दी उन्होंने चाय दी और फिर घर के काम में लग गयी।

मैं वीणा के पास गया, वो बिस्तर पर लेटी थी... बिलकुल मुरझाई सी लग रही थी, उसे पता था मैं आज जाने वाला हूँ...।

उसने हल्की करुण आवाज में कहा– शुभम इधर आओ।

मैं उसके पास गया, उसने मेरे दोनों हाथ कस के पकड़ लिए और धीरे से कहा– 'मैं तन और मन से सिर्फ तुम्हारी हूँ इसे तुम्हारे अलावा और कोई नहीं छू सकेगा, तुम जाओ और अच्छे से अपनी पढ़ाई करो... मुझे पता है लाइफ में तुम्हें क्या करना है... मेरी चिंता बिलकुल मत करना और मुझे कभी भूलना नहीं।''

मैं उसकी आज्ञा कभी नहीं टाल सकता था पर उसे इस हालत में छोड़ के भी तो नहीं जा सकता था। उसने उठकर सब से नजरे छुपाते हुए मेरे माथे को चूम लिया और फिर इसके आगे मैं उसके कुछ भी न कह सका।

मैं चल दिया घर से अपने सफ़र की ओर... सभी ने माँ, पापा चाची और बुआ जी ने टीका लगाया और ढेरों आशीष दिए। सबसे ज्यादा तो माँ परेशान हो रही थी पर मुझे सिर्फ वीणा की चिंता थी। मैं उसका आलिंगन करना चाह रहा था परन्तु नहीं कर पाया। अपने प्रेम को अपने हाथों में समेटे खुशी मैं चल दिया। जब मैं स्टेशन पहुँचा तो वो स्कूटी पे वहां मेरा इंतज़ार कर रही थी।

देखते ही डांटा उसे– तुम्हें बुखार है और तुम अकेले यहाँ कैसे चली आई....? उसने बिना कुछ कहे मुझे अपनी बाहों में जकड़ लिया। ट्रेन चल पड़ी, उसकी आँखों में आंसू थे जो मुझे अलविदा नहीं कहना चाह रहे थे बल्कि बार बार ये बता रहे थे कि देख लो जब भी तुम दूर जाओगे मैं उसकी हिफाज़त करने खुद ही आ जाऊंगा। मैं उसे ट्रेन से तब तक देखता रहा जब तक उसका चेहरा आँखों से ओझल नहीं हो गया।

इसी तरह एक साल कैसे गुजर गया पता ही नहीं चला। फिर मैं अपने भविष्य को बनाने में इतना व्यस्त हो गया की मुझे अपने आलावा और किसी की सुध हीं नहीं रही। महीनों–महीनों हो जाते थे वीणा से बात ही नहीं कर पाता था... ना फ़ोन ना मेसेज... अब तो छुट्टियों में घर जाना भी बंद कर दिया था। बस माँ से वीणा के बारे में पूछ लिया करता था। पर उसने कभी कोई शिकायत नहीं की। अब मेरा एक साल और बचा था ग्रेजुएशन पूरा होने में।

एक दिन वीणा का फोन आया... मैं एक प्रेजेंटेशन बनाने में व्यस्त था... मैंने फोन उठाया ''हेल्लो शुभम कैसे हो?''

''हेलो, वीणा... तुम... हाँ मैं ठीक हूँ तुम कैसी हो।'' – मैंने कहा

''हाँ मैं भी ठीक हूँ और बताओ खाना पीना ठीक से करते हो ना...? देखो लापरवाही मत करना।'' उसने हलकी आवाज में कहा...

मैंने कहा– ''हाँ, ठीक है।'' मैं उससे कहना चाह रहा था तुम मेरी इतनी फिक्र मत किया करो। पर कुछ सोंच कर रुक गया। वो अचानक हलके–हलके सुबकने लगी और फिर चुप हो गयी। मैं कुछ नहीं बोल पाया।

फिर वो ही अपने आप को संभल कर बोली– ''और बताओ तुमने वहां कोई गर्लफ्रेंड बना ली या अभी तक ऐसे ही हो?''

मैंने बस हल्का सा एक शब्द में जबाब दिया– ''नहीं''।

''तो बना लो कब तक यूँ ऐसे अकेले रहोगे? जिंदगी बहुत लम्बी है इसे अकेले नहीं काटा जा सकता।'' उसने हलके से मुस्कुराकर बोला

मैंने भी कहा– ''गर्लफ्रेंड बनाऊंगा तो मेरे सपने कौन पूरे करेगी? वैसे भी अब दूसरी गर्लफ्रेंड बनाने की कोई इच्छा नहीं है

आई हुयी थी वो भी बहुत खुश लग रही थी शायद... मुझे खुश देखने के लिए। आस–पड़ोस से सभी मिलने आये हुए थे, सब ने हाल चाल पूछा और अपने–अपने घर चले गए, वो कोलाहल जो सभी की शुभकामनाओं का आह्वाहन कर रहा था थम गया था पर मेरे कानों में ये कैसा कोहराम मचा हुआ था। आखिर क्या हो रहा था मुझको।

मैं बार–बार वीणा का सामना करने से बच रहा था पर कितनी देर बचता... मेरे एक दोस्त का फ़ोन आया... मैं बात करने छत पे निकल गया। बात ख़तम करके जैसे ही पीछे मुड़ा सामने वीणा खड़ी थी।

उसके हाथ में पानी का गिलास था। उसने मेरी तरफ गिलास बढ़ाते हुए पूछा– ''रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई शुभम्? नहीं, मैंने पीछे मुड़ते हुए कहा। क्या बात है शुभम तुम...

''क्यों दिखावा कर रही हो वीणा... क्यों ?'' मैंने उसकी बात बीच में ही काटते हुए झुंझलाकर कहा। वो एक दम से चौंक उठी।

मैं...मैंने क्या किया है मैं तो बस... तुम्हारे सफ़र..र... के बारे में...

''देखो वीणा मुझे सब पता है ये नकली हंसी और खुश रहने का नाटक मत करो तुम मेरे सामने, मैं जानता हूँ... मैं गुनाहगार हूँ तुम्हारा... मैं ये जानता हूँ। जीवन में जितने दुःख मैंने तुम्हें दिया है उतने और किसी ने नहीं दिए होंगे... इसलिए तुम मुझसे सिर्फ नफरत करो... जिसके लायक हूँ मैं। तुम यहाँ क्या कर रही हो? तुम्हारा घर तो शहर में है न अब? तो जाओ वहां...

वो चुप खड़ी रही... उसकी आँखों में आंसू आ गये... मुझे लगा ये मैंने क्या कर दिया। अपनी ज़िन्दगी संवारते मैंने उसकी हंसी उसकी खुशी का कभी ख्याल नहीं किया। ऐसा कैसे कर सकता हूँ मैं? मैं आत्मलज्जा से भरने की वजाय उसी पर भड़क रहा हूँ... मैं उसी समय फूट–फूट कर रोने लगा... मैं उसके पास गया और उसके आंसुओं को पोछकर बोला– ''मुझे माफ़ कर दो वीणा मुझे पता है मैं उसके काबिल भी नहीं... मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूँ नहीं रह सकता तुम्हारे बिना... तुम्हे किसी और के हवाले नहीं कर सकता। मैं आ गया हूँ ना... अब मैं सब ठीक कर दूंगा, तुम बिलकुल चिंता मत करो।''

''नहीं ... शुभम, कुछ ठीक करने की जरुरत नहीं है... अब बहुत देर हो चुकी है... जब मुझे तुम्हारी सबसे ज्यादा जरुरत थी तब कहाँ थे तुम? कहाँ थे तुम जब मैं तुम्हारे भरोसे मम्मी, पापा से शादी के लिए इनकार कर पाती। मुझे तुमसे उस समय कुछ नहीं चाहिए था मुझे बस हिम्मत चाहिए थी... सच कहने की हिम्मत, तुम्हारे प्यार को अपनाने की हिम्मत। पर तुमने अपने सपनों के आगे मेरे प्यार को कभी समझने की कोशिश भी की है... बचपन की आदत है तुम्हारी जब हम यहाँ और साथियों के साथ खेलते थे तो तुम बस देखते थे कभी खेलने की इच्छा नहीं की... और आज जीवन के इस सबसे बड़े खेल को भी तुमने चुपचाप देखता ही रहा...। मुझे पता है शुभम... तुम मुझसे सच में बहुत प्यार करते हो पर ये भी सच है कि अपने सपनों से ज्यादा नहीं... और मैंने भी तुमसे हमेशा सच्चा प्यार किया है... तुम्हारे सपनों के बीच कभी नहीं आई। पर मैं एक लड़की भी हूँ शुभम... मैं और कितना कर पाती... और...''

''और क्या वीणा... और... आगे तो बोलो चुप क्यूँ हो गयी''– मैंने अधीर होकर कहा।

''... मैंने उस शादी से इनकार कर दिया है...और...और... र... तुमसे भी शादी नहीं कर सकती अब... आज मैं तुमसे बहुत दूर जा रही हूँ और अपनी लाइफ अकेले ही जीना चाहती हूँ इसलिए आखिरी बार तुमसे मिलने चली आई। शुभम प्लीज देखो कोई जिद मत करना... और हमेशा खुश रहना... एक अच्छी सी लड़की देखकर उससे शादी कर लेना।''

मैं कुछ बोलता इससे पहले ही वो नीचे चली गयी। मैं मूक खड़ा था, मैं क्या करुँ कुछ समझ हीं नहीं आ रहा था। शाम को वो मम्मी से विदा लेकर शहर चली गयी। और शायद मेरी ज़िन्दगी से भी। रात को खाना खाने के बाद माँ ने सारी बात बताई और मेरी अच्छी खबर ली। ''तूने बताया क्यूँ नहीं की तुम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हो... कह तो देते, हम लोग तुम्हारी शादी करा देते तब उसके पापा ना उसकी शादी कहीं और तय करते न ही वो शादी टूटती, ना उनकी इतनी बदनामी होती। अब आखिरी समय पे वीणा ने मना कर दिया कि वो ये शादी नहीं करेगी क्यूंकि वो तुमसे प्यार करती है। उसके पापा ने वीणा को घर से निकाल दिया और शहर वाले मकान में जाने को बोल दिया आज वो यहाँ आई तो उन्हें पता था पर कोई भी उससे मिलने तक नहीं आया और ये सब हुआ है तेरी वजह से...कितनी भली लड़की है वीणा और तू...? देख मुझे कुछ नहीं पता तुझे ही सब ठीक करना है अब।''

उस रात मैं एक निश्चय करके लेट गया कि वहाँ मैं सब ठीक कर दूंगा। मैं उसके मम्मी–पापा को मनाऊंगा। सुबह होते ही मैं उनके घर गया चाची ने तो देखते ही मुह फेर लिया। चाचा ही बोले– ''अरे शुभम... आ गए? कब आना हुआ कॉलेज से? सुना है तुम्हारी जाँब लग गयी? चलो बधाई हो।''

''हाँ चाचा जी, आज ही आया हूँ।''– मैंने गर्दन नीचे ही झुकाए कहा, मैं फिर बोला– ''चाचा जी मुझे माफ़ कर दीजिये मुझे नहीं पता था वीणा ऐसा कुछ करेगी। मुझे लगा वो मुझे भूल जाएगी। पर...''

इतने में चाचा जी रोआसे हो आये... बोले– तुम लोग पहले ही मुझे बता देते तो बेटा इतना सब कुछ नहीं होता... देख तेरी चाची कितना रोती है जब से वीणा को उस मकान में भेज दिया है हर वक़्त बोलती है उसे बुलवा लो... पर वो है की जिद पे अड़ी हुई है कि नहीं आयेगी। मैंने चाचा से और चाची से कहा– ''हम लोग कल ही चलेंगे और वीणा को मना कर लेकर आयेंगे।''

अगले दिन जब मैं और चाचा शहर के उस मकान में पहुंचे तो वो बंद था। आसपास देखने पर कुछ पता नहीं चला। फिर नीचे दरवाजे पे एक कागज़ का टुकड़ा मिला जिस पर लिखा था...

डिअर,

मम्मी, पापा...

वरना पहली वाली और नाराज़ हो जाएगी।''

मैंने इतना कहा ही था की वीणा फिर से सुबकने लगी ऐसा लगा कि बार–बार अपने आंसुओं को पोछ रही हो पर उसके आंसू थम ही नहीं रहे थे। मैंने घबरा कर पूछा क्या हुआ... वीणा...

''शुभम् मैंने पूरी कोशिश की कि तुम्हारे और तुम्हारे सपनों के बीच मैं न आऊ, जहाँ तक हो सकता था तुम्हारा साथ देने की भी कोशिश की ... पर अब और नहीं... दे सकती... और फिर से वीणा सिसकियाँ भरने लगती है।

''मुझे पता है वीणा तुमने जो त्याग किया है वो कोई और नहीं कर सकता तुम ही तो मेरी शक्ति हो, पर तुम आज ये सब क्या और क्यूँ कह रही हो?''

''पापा ने मेरी शादी तय कर दी है और मैं मना नहीं कर सकती'' उसने उस ठंडी आह भरते हुए कहा।

'मना करुँ भी तो क्या... कहूँ उनसे? मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है शुभम्। जब तुम यहाँ से गए थे मैंने देखी थी तुम्हारे आँखों में सपने जिनमें मैं भी थी पर शायद आज सपने तो वही हैं पर उनमें अब मैं कहीं नहीं हूँ। कभी–कभी तो मुझे लगता है तुमने मुझे कभी प्यार किया ही नहीं पर फिर तेजी से आँखें बंद कर लेती हूँ ताकि ये ख्याल मन से दूर निकल जाये दोबारा न आये। हाँ मैंने कभी तुमसे एक वादा किया था चाहती हूँ उसे तोड़ने से पहले मैं मर जाऊं पर नहीं ये कायरता होगी इसलिए बस इतना ही कहूँगी शायद वो वादा इस जन्म में मैं नहीं निभा सकुंगी, मुझे हो सके तो माफ़ कर देना। इस बोझ को लेकर तुमसे दूर जाना संभव नहीं था वरना आज भी ऐसी कोई बात नहीं करती जो तुम्हें कमजोर बना दे। तुम कभी खुद को गलत मत समझना हमें पता है तुम बहुत मजबूत हो। अपने सपनों को जीने की हिम्मत हर किसी में नहीं होती। मैं बहुत खुशनसीब हूँ कि मैंने तुमसे प्यार किया। बस मुझे हमेशा एक बात खलती है और खलेगी... अपने सपनों में कहीं तुम मुझे भी शामिल कर लेते.... तो...'' – इतना कहकर एक बार फिर उसकी सांस टूट गयी... मैं अभी भी चुप था... क्या कहता मेरे पास शब्द ही नहीं थे या यूँ कहूँ आज मुझे उसका रोना भी व्यर्थ लग रहा था। क्योंकि करती है इतना प्यार वो मुझे, जब उसे पता है कि मुझे उसकी ज़रा भी परवाह नहीं।

''वीणा तुम एक ऐसे इंसान की इतनी परवाह क्यों कर रही हो जिसने तुम्हारी ज़रा भी फिक्र नहीं की... खुद को इतनी तकलीफ मत दो। मैं विनती करता हूँ तुमसे।''

''क्योंकि मुझे पता है तुम मुझसे बहुत प्यार करते हो परन्तु अपने सपनों से ज्यादा नहीं, तुम्हें हर पल मेरी फिक्र रहती है हर पल तुम सोंचते हो वीणा को इतनी तकलीफ मैं क्यों दे रहा हूँ? पर शुभम मुझे तुमने कहीं कोई तकलीफ नहीं दी मुझे तो खुशी है इस बात की कि तुमने खुद को बनाने में बहुत मेहनत की है। बस अब कभी कमजोर मत पड़ना मेरे जाने से भी नहीं।''

मैं खामोश था... मेरी आँखें तक भी नम नहीं हुई, शायद मैंने खुद को इतना कठोर बना लिया था।

''हाँ मैं तुम्हें बताना भूल गयी मैं अब वहाँ हमारे गाँव में नहीं रहती, पापा ने शहर में नया घर ले लिया है छोटा सा ही है।''

''तो माँ ने मुझे बताया क्यों नहीं?'' – मैंने पूछा

''मैंने मना किया था उन्हें तुम्हें कुछ फ़ोन पे बताने को उनसे कहा था जब तुम घर आ जाओगे तो बता दे, पर तुम इस बार भी घर नहीं आये।''

''शादी कब है और लड़का क्या करता है?'' –मैंने हलके से पूछा जैसे मैं खुद से ही पूछ रहा हूँ।

''ठीक 4 महीनें बाद... उनकी थोक कपड़े की दुकान है।''

''शुभम्..म..''– उसने ऐसे कहा जैसे वो कुछ सुनना चाह रही हो... कि... शुभम आ जाओ... किसी तरह रोक लो ये सब... रोक लो मुझे... दूर जाने से... कह दो आज भी तुम मुझसे उतना ही प्यार करते हो... आ जाओ मेरी जिंदगी में वापस दोबारा... दे दो मुझे भी अपने सपनों में जगह...। पर मैं चुपचाप सुनता रहा। काश! वो मुझसे शिकायत करती, काश...काश... और न जाने कितने काश आज मेरे दिमाग के अन्दर तैर रहे हैं और उनके बीच मैं डूबा जा रहा हूँ। लड़खड़ाती आवाज़ में कहा गया वो शब्द ''शुभ...म...म'' आज भी अंतर्मन को झकझोर जाता है।

कुछ दिन बाद उसके कॉल को जोर से हेलो, हेलो... के साथ डिसकनेक्ट कर दी फिर अपने कमरे में आकर प्रेजेंटेशन तैयार करने लगा। मेरे ग्रेजुएशन पूरा होने में अभी 2 महीने बचे हुए थे और वीणा की शादी को ढाई महीना।

कॉलेज का आखिरी महिना मेरी लाईफ के सबसे अच्छे दिनों में से था। मेरी जाँब लग गयी थी, मेरा प्लेसमेंट माइक्रोसॉफ्ट इंडिया में हो गया था वो भी सालाना पैकेज 1 2 लाख रुपये के साथ। मुझे अपनी ब्रांच का गोल्ड मेडलिस्ट चुना गया। मेरा नाम हर अखबार के पन्नों पे आ गया। मैंने वो करके दिखा दिया जिसका सपना कोई गांव का इंसान बमुश्किल से पूरा कर पाता है। मैं खुश था आखिर होता भी क्यों नहीं जो मैं चाहता था वो सब मुझे मिल गया मेरी कई वर्षों की तपस्या का ही परिणाम था जो मैं आज खुशी–खुशी घर जा रहा था। कॉलेज की कई मीठी यादे, कई दोस्त पीछे छूट रहे थे पर ये तो ज़िन्दगी का नियम है आगे बढ़ने के लिए पीछे बहुत कुछ छोड़ना ही पड़ता है जाते हुए दुःख हो रहा था कि अब कभी यहाँ आना नहीं होगा, पर जाना तो था ही। सभी दोस्तों से फिर जल्दी मिलने का वादा करके और इन्टरनेट के ज़रिये कांटेक्ट में रहने का वादा करके मैं निकल चुका था एक बार फिर अपने घर की ओर। अभी तक मेरे दिमाग में वीणा के बारे में कुछ भी नहीं चल रहा था। पर जैसे ही ट्रेन मेरे घर की ओर बढ़ रही थी मेरी उलझने बढ़ती जा रही थी। मेरे सवाल जो मुझे खुद से थे मुझसे बार–बार पूछ रहे थे कैसे मिलोगे वीणा से? कैसे सामना करोगे उसका? वो लड़की जिसने कभी प्यार के बदले प्यार की मांग नहीं की, जिसने कभी मेरे ऊपर अपना हक होकर भी हक नहीं दिखाया कैसे कहूँगा उससे जाकर की तुम खुश रहना।

घर पहुँचने पर सबने जोरदार स्वागत किया। वहाँ वीणा भी

मुझे माफ़ कर दीजिये... मैंने आप सबों को बहुत दुःख दिया है। आपका गुस्सा बिलकुल जायज़ था। मुझे आपको बेटी का सुख देना चाहिए था पर मैं न दे सकी... मैं क्या करती... मजबूर थी... शुभम का प्यार मुझे अपनी नयी गृहस्थी नहीं बसाने देता... मैं अनजाने ही किसी की जिंदगी ख़राब नहीं करना चाहती थी। सबको अपने–अपने हिस्से की खुशी जीने का पूरा हक है।

मुझे पता है आप लोगों के लिए ये इतना आसान नहीं होगा... पर कुछ फैसले व्यक्ति को स्वयं लेने होते हैं शायद यही भगवान की मर्ज़ी हो उस पर तो किसी का बस नहीं चलता। मैं इस घर और शहर को छोड़कर जा रही हूँ... कहाँ ये नहीं बता सकती... पर जहाँ रहूंगी सकुशल रहूंगी... आपकी बच्ची में इतनी ताकत है अभी... और पापा मम्मी को समझाने की कोशिश करना वो परेशान न हो... मैं हर महीने एक चिट्ठी लिखा करुंगी। पापा शुभम से कहना मुझे भूल जाये मैं अपनी जिन्दगी अब अपने तरीके से जीना चाहती हूँ मेरी फिक्र ना करें.. .एक अच्छी सी लड़की देखकर शादी कर ले... मैं बहुत खुश हूँ उसकी तरक्की से। कोई दोस्त जब सफलता की नयी ऊँचाइयाँ छूता है तो एक दोस्त को खुशी ही होनी चाहिए है ना पापा...? यही सिखाया था ना अपने बचपन में मुझे। पर मैं वहां खुश नहीं रह सकती थी मैंने बहुत कोशिश की कि मेरी वजह से किसी को कोई दुःख न हो पर... मेरे पास इसके आलावा और कोई रास्ता नहीं था मेरे पास। मैंने मकान की चाबी पड़ोस वाली ममता आंटी को दे दी है। सभी अपना ख्याल रखियेगा... और पापा अपनी दवा समय से लेना, मम्मी को बोलना वो रोये ना मैं ठीक हूँ।

आपकी लाडली–वीणा।''

आज उस ख़त को पढ़े दस बरस हो गए हैं... पर जैसे लगता है कल ही तो पढ़ा था... उस कागज़ के टुकड़े में लिखा एक एक लफ्ज़ मुझे याद है। मैंने और चाचा जी ने वीणा को ढूँढने की बहुत कोशिश की पर आज तक उसका कुछ पता नहीं चला। आज सब कुछ बदल गया है। एक दिन खबर आई कि वीणा की कार एक्सीडेंट में मौत हो गयी बस सुनने में आया। किसी ने देखा नहीं था ना उसे ना उसकी लाश को। इस सदमें को उसकी माँ भी बर्दाश्त नहीं कर पायी और स्वर्ग सिधार गयी। मेरी माँ हृदय तो वैसे ही कमज़ोर था। मैं सोंचता हूँ आखिर ये सफलता, ये नौकरी हासिल करके क्या पा लिया मैंने? घृणा होती है मुझे खुद से और ऐसी जिंदगी से। कब का मैं ये सब छोड़ देता पर जिस जगह पर मुझे देखने के लिए वीणा ने इतना बड़ा त्याग किया था वो सब मैं एक झटके में केसे खत्म कर देता। मुझे जीना ही था और अपनी इसी नौकरी के साथ। शायद यही मेरी गलतियों की सजा भी है। पर मुझे उम्मीद है एक दिन वीणा मुझे मिल जाएगी उसे कुछ भी नहीं हुआ है और तब मैं उससे कहूँगा– वीणा बहुत सजा मिल गयी मुझे मैं इतने पाप अपने सर लेकर नहीं जी पाऊंगा... लौट आओ... लौट आओ वीणा... लौट आओ...।

लोकवाणी
आदरणीय सम्पादक महोदय
संभाव्य

आपकी अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय पत्रिका 'संभाव्य' का अक्टूबर अंक को निःशुक्ल सहज उत्सुकतावश पहले अनुक्रम पढ़ा। कई लेखक/लेखिकाएँ परिचित थीं। दोपहर को अध्ययन के समय नजर पत्रिका पर गई। बहुत आश्चर्य हुआ कि तीन साल में पत्रिका की बावत कुछ पता ही नहीं चला। संपादकीय ने प्रभावित किया। 'सच... हम अक्सर वही बात समझते हैं जिसे सुनना पसंद करते हैं।' निरजा हेमेन्द्र की प्रेम कहानी बहुत भाई। 'हृदय की गीत' कहानी सर्वश्रेष्ठ लगी। शेष कहानियाँ भी अच्छी थीं। ग़ज़लों ने खुश कर दिया। कविताएँ अच्छी लगी। 'वह बुजुर्ग' उल्लेखनीय रही। लोकवाणी से पिछले अंग का पता चलता है। लघु कथा भी ठीक थी। इस समय जबकि पत्रिकाएँ आर्थिक संकट से गुजर रही हैं। आपका यह साहसिक प्रयास आश्चर्यचकित करता है। यह प्रयास स्तुत्य है। कहानी 'संयोग का नियति का खेल' में अमेरिका में भी नाम और उपनाम का अधिक मूल्य होना रवि को आहत करता है। पर हमारे देश में भी जाति योग्यता पर हावी ही तो है। योग्य होने पर भी केवल जाति के कारण हेय माना जाना हमारी मूढ़ता का द्योतक है। हमें अपनी इस मानसिकता पर शर्म आनी चाहिए।

पत्रिका राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी पहचान बना रही है, जानकर अच्छा लगा। पत्रिका की टीम आप सब का बहुत–बहुत आभार। 'संभाव्य' की धमक देर तक और दूर–दूर तक सुनाई देती रहे, इसी शुभकामना के साथ आपका...।

विद्यालाल
अशोक नगर, पटना–20

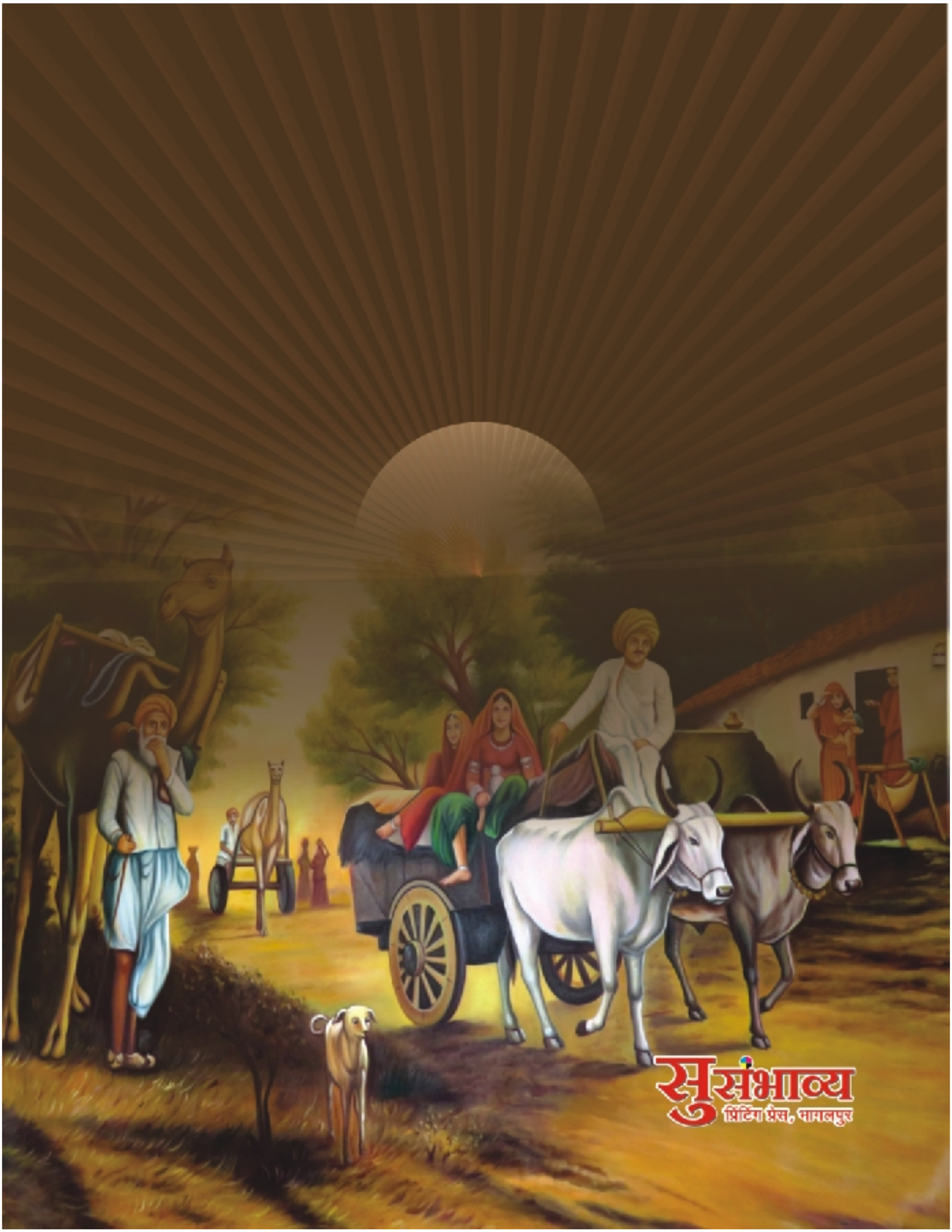
सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर